कृषि–पूर्वी किरण

अंकः 4 वर्षः 2018

संपादक

श्यामल कुमार मंडल कल्याण सुन्दर दास
सती शंकर सिंह

भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंघान परिषद
भूमि विहार कम्पलेक्स, ब्लॉक–जी.बी.,सेक्टर–III
सॉल्ट लेक, कोलकाता – 700 097
वेब साईट : www.atarikolkata.org

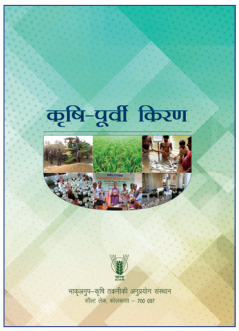

प्रकाशक

निदेशक, भाकृअनुप–अटारी, कोलकाता

© इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना निषेध है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण पूर्णतया संबंधित लेखक के हैं।

मुद्रक

ईस्टार्न प्रिंटिंग प्रसेसर, 93, दक्षिणदारी रोड., कोलकाता – 700048

संपादकीय

हम *'कृषि – पूर्वी किरण'* का यह चौथा अंक आप तक पहुंचाने में सफल हो रहे है क्योंकि इस में आप सभी के प्यार, सहयोग एवं समर्थन है। हम आप सभी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं, आपको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आपका यह सहयोग हमें आगे भी इसी तरह सदैव ही मिलता रहेगा। हम अपने सभी रचनाकारों से भी कृतज्ञ हैं जिनकी रचनायें हमें बराबर समय से प्राप्त हो रही हैं।

कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान कोलकाता उन्नत कृषि के विभिन्न वैज्ञानिक शोध के उपलब्धियां प्रयोगशाला से लेकर कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से साधकों/हितधारकों तक उनके आपने भाषा में पहुंचाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहा हैं। इस दिशा में *'कृषि – पूर्वी किरण'* पत्रिका का प्रथम अंक का प्रकाशन का शुभारम्भ एक अहम प्रयास था, जो कि सन 2015 में हुआ था। पत्रिका के इस चौथा अंक के माध्यम से पूर्वतन क्षेत्र–2 के कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किए गए आधुनिकतम कृषि तकनीकों की सफलतापूर्वक प्रयोग की कहानियॉ, सफलता गाथाएं आदि किसानों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है। हमारी यह कोशिश रही है कि हर आलेख के रचनाकारों के योगदान सही रूप से प्रतित हो। परन्तु यदि कोइ गलती रह जाए तो वह नितान्त अनिच्छाकृत है। इस अंक में तकनीकी आलेख के साथ–साथ कुछ लोकप्रिय आलेख भी दिए गए है।

हम संस्थान के निदेशक डॉ. सती शंकर सिंह का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें सतत प्राप्त होता रहा है। *'कृषि – पूर्वी किरण'* के यह चौथा अंक का प्रकाशन में संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ–साथ अनुबंघ पर कार्यरत सभी कर्मियों का पूर्ण योगदान रहा है। हम उन सभी के आभार व्यक्त करते हैं। हम *'कृषि – पूर्वी किरण'* के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों के भी आभारी हैं।

आपके महत्वपूर्ण सुझावों का भी हमेशा ही प्रतिक्षा रहेगी ताकि भविष्य में इस प्रकाशन को और भी बेहतर बनाया जाए। हम पुनः सभी शुभचिन्तकों, लेखकों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए पत्रिका का इस अंक का सफलता कामना करते हैं।

ढेरों शुभकामनाओं सहित,

कोलकाता
फरवरी 2018

संपादक

अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करो | और सभी दूसरे विचार को अपने दिमाग से निकाल दो यही सफलता की पूंजी है |

– स्वामी विवेकांनद

विषय-सूची

क्र. सं.	लेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1	बांका जिले की पारम्परिक खेतीः विविधताएँ एवं आयाम	डॉ0 कुमारी शारदा डॉ0 सुनीता कुशवाह डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार डॉ0 रघुबर साहू श्री संजय कुमार मंडल	1
2	मधुमक्खी पालन द्वारा उद्यमिता विकास	डॉ0 विष्णु देव सिंह एवं डॉ0 विनीता रानी	9
3	डेयरी व्यवसाय में बछड़ो-बछड़ियों का वैज्ञानिक प्रबंधन	डा. संजीव कुमार डा. कुमार रविरंजन डा. संजय कुमार एवं डा. आर. के, निराला	12
4	गृह वाटिका द्वारा स्वास्थ्य रक्षा	डा. विनीता रानी	15
5	ब्रायलर फार्मिंगः लाभकारी व्यवसाय	डा. संजीव रंजन	19
6	मखाना की उन्नत खेती	डा. सुनीता कुशवाह एवं डा. कुमारी शारदा	21
7	पोषण वाटिका	रेणु कुमारी	27
8	धान के समेकित रोग-व्याधि प्रबंधन	उदय प्रकाश नारायण	32
9	गेंहूँ की उन्नत खेती	डा0 विनोद कुमार	36
10	शकरकन्द की वैज्ञानिक खेती	सुधीर चन्द्र चौधरी	41
11	परवल फसल की देखभाल	डा. मुकेश कुमार	47
12	पटना जिला में मशरुम की संभावना एवं चुनौतियाँ	श्री राजीव कुमार एवं डॉ0 विनीता रानी	49
13	खगड़िया जिले में दुग्ध उत्पादन की वर्तमान स्थिति एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया का अंगीकृत गाँव मेहसौड़ी में योगदान	डा0 ब्रजेन्दु कुमार एवं डा0 सत्येन्द्र कुमार	51
14	कृषि एवं जलवायु	श्री सुनील कुमार चौधरी एवं डा0 मनोज कुमार	57
15	सूक्ष्म सिंचाई पद्धति में फिल्टर का महत्व एवं उनकी उपयुक्तता	श्री मनोज कुमार राय एवं डा0 ब्रजेन्दु कुमार	60
16	प्याज की खेतीः आर्थिक समृद्धि का आधार	सुनीता कुशवाह	65
17	प्रमुख शूकर रोगों की पहचान, उपचार, बचाव एवं नियंत्रण	डा. एस. के. मंडल एवं डा. नीतिका शर्मा	70
18	नालन्दा जिला में ‘‘जैविक खेती’’ के माध्यम से कृषको में सशक्तीकरण	डा0 संजीव कुमार डा0 उमेश नारायण डा0 बी0 के0 सिंह, एवं श्री एन0 के0 सिंह	78
19	मौनालय प्रबंधन द्वारा किसानों की समृद्धि	मनोज कुमार	81
20	स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए जैविक खेती में कुषल फसल प्रबंधन	डा. अभिषेक प्रताप सिंह	88

अच्छा व्यवहार सभी गुणों का सार है।

– अरस्तु

बांका जिले की पारम्परिक खेतीः विविधताएँ एवं आयाम

डॉ0 कुमारी शारदा, डॉ0 सुनीता कुशवाह,
डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार, डॉ0 रघुबर साहू एवं श्री संजय कुमार मंडल
कृषि विज्ञान केन्द्र, बांका, बिहार

बांका जिला बिहार के दक्षिण–पूर्वी भाग में बसा 305621 हेक्टेयर में फैला प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर मनोरम छटा बिखेर रहा है। भागलपुर से बँटकर 21 फरवरी 1991 को इस जिले की स्थापना हुई। पौराणिक काल से ही महत्वपूर्ण मंदार पर्वत एवं पापहरणी इसके 11 प्रखंडों में से बौंसी प्रखंड में जिला मुख्यालय से 18 कि0मी0 की दूरी पर अवस्थित है। यहाँ पर मकर संक्रांति से शुरू होनेवाला प्रसिद्ध बौंसी मेला एक महीने तक चलता है।

यहाँ के लोगों का मुख्य पेशा खेती है। 11 प्रखंडों में 07 प्रखंड समतल एवं उपजाऊ है तथा शेश चान्दन, कटोरिया, बेलहर एवं बौंसी पहाड़ी क्षेत्र है। यहाँ की मुख्य फसल धान तथा गेहूँ है। सुप्रसिद्ध कतरनी यहाँ के अमरपुर, बौंसी, बाराहाट एवं रजौन प्रखंडों में उगायी जाती है। नगदी फसल के रूप में अमरपुर, रजौन एवं धोरैया में गन्ने की खेती बहुतायत से होती है। अतः यहाँ गुड़ बनाने के लिए कई मील भी स्थापित है।

जलवायवीय परिस्थितियों में यहाँ गर्मी में बहुत गर्मी (45^{0}C) पड़ती है, परन्तु सर्दी का मौसम (15^{0}C) सुहावना होता है। जून से सितम्बर बारिश का महीना होता है। यहाँ की जलवायु एवं मिट्टी (चिकनी दोमट, बलुई दोमट, दोमट एवं लैटेराइट) में विभिन्नता के कारण इस जिले में पारम्परिक रूप से कई फसल जैसे धान, अरहर, कुलथी, मक्का, कुद्रुम, मेस्ता, मूंग आदि की फसल खरीफ में ली जाती है तथा रबी में गेहूँ, चना, सरसों, मसूर, तीसी एवं गरमा मूँग तथा गरमा तिल की खेती की जाती है।

अरहर के साथ मक्का, सनई, चँवला(घंघरा) की मिश्रित खेती खासकर कटोरिया एवं चान्दन प्रखंड में प्रचलित है। इसके पीछे अवधारणा है कि मक्का, चँवला(घंघरा) तथा सनई पहले काट लिया जाएगा और अरहर की फसल बाद में कटेगी। अतः एक फसल खराब होने की स्थिति में भी किसान दूरी फसलें ले लेते हैं। समतल क्षेत्रों में अरहर मेड़ पर लगाने की परम्परा प्रचलित है। अतः मिश्रित फसल से किसान एकल फसल की तुलना में अधिक मुनाफा कमा लेते हैं।

जिले के बौंसी, बांका एंव कटोरिया में जंगली क्षेत्र है, जिसमें मुख्य रूप से शाल (सखुआ), आसन, पलाश एवं महुआ के वृक्ष हैं। इसके अतिरिक्त इन जंगलों में बहेड़ा, कदम्ब, अमलतास, बबूल, सिरिस एवं शायन बबूल के वृक्ष भी पाये जाते हैं। फल–वृक्षों में आम एवं कटहल प्रमुख है। ताड़, खजूर, जामुन आदि भी पाये जाते हैं।

कटोरिया एवं चान्दन प्रखंड में कुछ वर्ष पूर्व तक पलाश के वृक्षों पर लाह की खेती की जाती थी, परन्तु कीड़े के प्रकोप के कारण लोगों ने इसकी खेती छोड़ दी, जिसकी उन्नत तकनीक को बढ़ावा देने की जरूरत है। कटोरिया के सलैया गाँव में वर्तमान में बेर के वृक्षों में लाह की खेती की जा रही है।

बांका जिले के कटोरिया प्रखंड के इनारावरण एवं तेतरिया इत्यादि गाँवों में अर्जुन के हजारों पौधे पर तसर सिल्क का कीड़ा पाला जा रहा है और कोकून का भण्डार गृह भी इनारावरण में अवस्थित है। इस रेशम कीट पालन से जमीन की उपलब्धता के आधार पर छोटे–बड़े सभी किसान लाभान्वित हो रहे हैं। खासकर अनुसूचित जाति के लोग इस व्यवसाय को अपनाकर घर बैठे अच्छा मुनाफा कमा रहे हैं।

पशुओं में गाय, भैंस, बकरी एवं भेड़ प्रमुख हैं, परन्तु गायें मुख्यतः देशी नस्ल की हैं जिनका आकार भी छोटा है। छोटे किसानों की महिलाओं के लिए बकरी पालन लाभकारी व्यवसाय है, परन्तु पी0पी0आर0 बीमारी के कारण अधिकांश बकरी मर जाती थी। इसके बचाव के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिक द्वारा 5000 बकरियों का टीकाकरण किया गया। मछलियों में रोहू, कतला, बोआरी, टेंगरा, झिंगा तथा पोठिया मुख्य रूप से पाया जाता है।

बांका जिले की पारम्परिक फसलों कुल्थी, कुद्रुम, वनकरेला तथा पक्षियों में कबूतर पालन तथा बटेर पालन की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

कुल्थी

कुल्थी बांका जिले के कटोरिया एवं चान्दन प्रखंड में मुख्य रूप से उगायी जाती है, जहाँ धान एवं मक्का की खेती संभव नहीं है तथा जहाँ जल–जमाव नहीं होता है। इसके लिए खेत की तैयारी उर्द एवं मूंग की तरह की जाती है। इसकी बुवाई खासकर अगस्त में की जाती है तथा बीज दर 40–50 कि0ग्रा0/हे0 है। बांका जिले में मुख्यतः स्थानीय उपलब्ध बीज लगाया जाता है, परन्तु इसकी प्रमुख उन्नत किस्में डी0बी07, बी0आर05 एवं 10 कोयम्बटूर तथा बिरसा कुल्थी–1 है। इसकी औसत उपज

25–30 क्विं0/हे0 है तथा 90–95 दिन में यह पककर तैयार हो जाता है। इसकी बुवाई से 48 घंटे पहले थीरम या केप्टान 2 से 2.5 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करने के बाद बुवाई से ठीक पहले राइजोबियम एवं पी0 एस0 बी0 से उपचारित कर बुवाई कर लेते हैं। बुवाई के समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से0मी0 तथा पौधे–से–पौधे की दूरी 10 से0 मी0 उपयुक्त है, हालांकि बाँका जिले में छिटकवा विधि प्रचलित है।

उर्वरक के रूप में 20 किलोग्राम नत्रजन तथा 60 कि0ग्रा0 स्फूर/हे0 की दर से प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। खरपतवार निकालते रहें। जब कुल्थी की फलियों का रंग भूरा हो जाता है और पौधे पीले पड़ने लगते हैं तो पौधे को काटकर धूप में सुखा लें तथा दाना अलग कर धूप में अच्छी तरह सुखाकर भंडारित कर लें। इसकी फलियाँ लगभग एक साथ पककर तैयार हो जाती है। बांका जिले में इसकी उत्पादकता 5.5 क्विंटल/हेक्टेयर है, क्योंकि किसान पारम्परिक तरीका अपनाते हैं।

इस दाल का औषधीय रूप में भी प्रयोग होता है और उन्नत तकनीक अपनाकर इसकी अच्छी उपज ली जा सकती है। कम मेहनत तथा कम लागत से अच्छा मुनाफा कमाया जा सकता है।

कुद्रुम

मालभेसी कुल का यह पौधा, जो शाखाओं युक्त, खड़ा एकवर्षीय झाड़ी के रूप में पाया जाता है। कुद्रुम उपोष्ण एवं उष्ण दोनों ही स्थितियों में उगाया जाता है। बांका जिले में कुद्रुम भी विशेष फसल है, जिसे खरीफ मौसम में लगाया जाता है। इसका तना लालिमा लिये हुए होता है तथा पत्तियाँ हरी से लाल होती है। यहाँ पर इसका प्रयोग सिर्फ चटनी एवं अचार के रूप में किया जाता है। अतः इस किस्म को मेस्ता एवं सनई की तुलना में कम क्षेत्र में लगाया जाता है, जबकि दूसरी किस्मों को एकल एवं मक्का के साथ अन्तर्वर्ती खेती के रूप में रेषे निकालने के लिए किया जाता है। स्थानीय किसानों के अनुसार इसके मूल्य संवर्धन की जानकारी न होने के कारण इसे कम क्षेत्रों में उगाया जाता है।

कुद्रुम पौष्टिक एवं औषधीय दोनों ही दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। इसके 100 ग्राम पंखुड़ियों में 49 कैलोरी उर्जा, 11.31 ग्राम शर्करा, 0.64 ग्राम वसा, 0.96 ग्रा0 प्रोटीन, 14 माइक्रोग्राम विटामिन–ए, 0.011 मि0ग्रा0 थायमिन, 0.028 मि0ग्रा0 राइबोफ्लेविन, 0.31 मि0ग्रा0 नियासिन, 12 मि0ग्रा0 विटामिन–सी, 215 ग्रा0 कैल्शियम, 1.48 मि0ग्रा0 आयरन, 51 मि0ग्रा0 मैग्नेशियम, 37 मि0ग्रा0 फॉस्फोरस, 208 मि0ग्रा0 पोटाशियम तथा 6 मि0ग्रा0 कैल्शियम पाया जाता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि इसमें कम या अधिक मात्रा में सभी पौष्टिक तत्व विद्यमान हैं।

कुद्रुम का पंचांग काम में लिया जा सकता है, जिसमें लाल पंखुड़ियाँ प्रमुख है, जिससे चाय, पेय पदार्थ, जेली, जैम, मुरब्बा, सुखाकर पावडर के रूप में आईसक्रीम, सूप तथा स्वादिष्ट चटनी एवं अचार बनाया जाता है। पत्तियों को साग के रूप में, तना से रेशे निकलते हैं। बीज में प्रोटीन की प्रमुखता होती है तथा इसे कॉफी के विकल्प के रूप में कुछ क्षेत्रों में काम में लिया जाता है। इसका कोमल जड़ भी खाने के योग्य होता है। पंखुड़ियों में पेक्टिन की अधिकता होने के कारण जेली आसानी से जमने में सहायक है। अतः जेली एवं जैम बनाते समय पेक्टिन मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सिर्फ चीनी मिलाकर जैम, जैली अच्छी तरह बनाया जा सकता है।

कुद्रुम का औषधीय महत्व भी है। इसमें साइट्रिक एसिड की अधिकता से शरीर को शीतलता प्रदान करता है तथा गर्मी से राहत देता है और रक्त संचरण में भी सहायक है। पत्तियाँ एवं फूल टॉनिक चाय के रूप में इस्तेमाल होता है। पत्तियों को गर्म करके फटे पाँव एवं घाव पर लगाने से घाव जल्दी भरता है। इसका उपयोग पाचन तंत्र एवं किडनी के कार्यों में भी सहायक है।

वनकरेला

बांका जिला में वनकरेला का उत्पादन बहुतायत रूप में होता है। वन करेला कुकुरबिटेसी परिवार का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम मोमोरडिका डायोका है। हिन्दी में इस पौधे को मीठा करेला, वनकरेला, बंगाली में ककरोल, राजस्थानी में ककोड़ा, आसाम में भरकरेला के नाम से जाना जाता है। बांका जिला में इसे चठैल, खकसी नामों से जाना जाता है। किसान इस करेला की खेती जुलाई से अक्टूबर माह तक करते हैं। वन करेला की शाखा को मई–जून माह में कटिंग करके लगाया जाता है। जुलाई माह में इस पौधे में पुष्पन की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है और फलन की प्रक्रिया अक्टूबर माह तक चलती है। फूलों का रंग पीला होता है। फल के उपर कांटेनुमा आकृतियाँ होती है। इसके फल 1 से 3 ईंच लम्बा होता है। यह विटामिन सी, एस्कार्बिक एसिड तथा आयोडीन का मुख्य श्रोत है। इसमें 84.1 प्रतिशत नमी, 7.7 ग्रा0 कार्बोहाईड्रेड, 3.1 ग्रा0 प्रोटीन, 3.1 ग्रा0 वसा, 3 ग्रा0 रेशा और 1.1 ग्राम खनिज लवण प्रति 100 ग्राम वजन पर पाये जाते हैं। इसके कच्चे फलों को सब्जी बनायी जाती है। इसके जड़ों को भी सब्जी और औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एक बहुवर्षीय लतावर्गीय पौधा है, जिसकी लंबाई 3 से 5 मीटर होती है। पोषक तत्वों से भरपूर मिट्टी में इसका उत्पादन अच्छा होता है। इसके बीजों से तेल निकाला जाता है। इसकी लम्बी नलिका समान जड़ों को औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह द्विलिंगीय पौधा है, जिसमें नर एवं मादा पौधे अलग–अलग होते हैं। मादा पौधे की जड़ें नर पौधे से अधिक लम्बी होती है। इसका प्रसारण बीजों के द्वारा होता है। बांका जिला में इस करेला की स्थानीय स्तर पर

खेती की जाती है और बाजार में इसकी उपलब्धता भी सुलभ होती है। इस पौधे का उपयोग आँखों की बिमारियों में, बुखार में, सर्पदंश में एवं डायबीटिज में औशधि के रूप में प्रयोग होता है। इसकी जड़ों के जूस का प्रयोग एंटीसेप्टिक के रूप में किया जाता है। इसके कच्चे फल को त्वचा पर लगाने से एवं भुने हुए बीज को खाने में उपयेाग करने से त्वचा की बिमारियाँ दूर होती है। इसकी पत्तियों का उपयोग बुखार, जौंडिस, अस्थमा, मूत्र विकार, मानसिक बिमारियों में किया जाता है।

बटेर पालन

बटेर अंडे और मांस उत्पादन के लिए पाला जाता है। विशेष रूप से गरीब किसान, जिनके पास अधिक निवेश के लिए पूँजी नहीं है वो कम लागत में बटेर पालन करके अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। बटेर 45 दिनों में बेचने लायक हो जाती है। इस समय इसका वजन 200–250 ग्राम का होता है। नर बटेर का वजन मादा बटेर की तुलना में कम होती है। नर बटेर के स्तन के उपरी हिस्से दालचीनी रंग के होते हैं एवं निचले भाग में हल्के भूरे छाया होती है। मादा बटेर के गले, चेहरे एवं स्तन के उपरी हिस्से भूरे रंग के साथ काला धब्बा होता है। 6 सप्ताह की उम्र में मादा बटेर अंडा देना शुरू कर देती है एवं एक वर्ष में 280 अंडे तक देती है। अंडे से निकले चूजे का वजन 8 ग्राम होता है। 1 वर्गफीट जगह में 4 बटेर रखा जाता है। फर्श पर 10 से0मी0 लकड़ी का बुरादा बिछा दिया जाता है। बटेर को 14–18 घंटे प्रकाश की आवश्यकता होती है। 2–8 महीने के बटेर में प्रजनन क्षमता अधिक होती है, फिर धीरे–धीरे कम जाती है। नर एवं मादा का अनुपात 1:3 होनी चाहिए। अंडे से चूजे निकालने के लिए मुर्गी के अंडे के साथ मिला देने पर मुर्गी बटेर के अंडे को भी सेता है एवं चूजे का उत्पादन होता है। इसमें 22–24 दिन लगता है।

नवजात बटेर का वजन मात्र 7 से 8 ग्राम होता है, इसलिए इसका देखभाल महत्वपूर्ण है। चूजे को 24 घंटे प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए एवं पानी के वर्तन में कंकड़ डाल दें, जिससे चूजे पानी में डूबे नहीं। फर्श पर रूखड़ा कागज या तार की जाली बिछा दें जिससे पैर फिसले नहीं।

बटेर औसतन 45 दिनों में अंडा देना शुरू कर देती है एवं 300–320 दिनों तक अंडा देती है। बटेर के आहार में 2700–2800 एम0ई0 उर्जा, 22–24 प्रतिशत प्रोटीन, 0.8 प्रतिशत फॉस्फोरस, 3 प्रतिशत कैल्शियम होती है।

बटेर के आहारः–

चावल पॉलिश (14%), मूंगफली खल्ली (16%), सूरजमुखी खली (14%), मछली मिल (10%), अस्थि मिल (1.4%), लाइम स्टोन (1.0%), नमक (0.3%), विटामिन और खनिज (0.3%)

एक वयस्क बटेर दैनिक 20–25 ग्राम दाना खाता है। बटेर में बीमारी होने की संभावना कम होती है। यह मुर्गी में होने वाली सभी बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक है।

एक 200–250 ग्राम का बटेर उत्पादन करने में 40–45 रू0 खर्च होता है एवं 45 दिन का समय लगता है एवं बाजार में इसकी कीमत 60–80 रू0 होता है।

कबूतर पालन

कबूतर पालन बांका जिले के लिए वरदान साबित हो रही है। कबूतर पालन में लागत कम एवं मुनाफा अधिक है। इसमें बीमारी होने की संभावना कम होती है एवं कम प्रबंधन में भी अच्छी पालन कर लेते हैं। इसलिए बांका जिले में यह लघु उद्योग का रूप ले रही है।

खानाः– कबूतर को खाने के रूप में चावल का टुकड़ा, गेहूँ, मकई खिलाई जाती है। किसान अपनी उपलब्धता के अनुसार उपयोग में लाते हैं। चावल उत्पादन का क्षेत्र होने के कारण चावल का टुकड़ा का उपयोग ज्यादा करते हैं। प्रत्येक दिन एक जोड़े कबूतर पर 50–60 ग्राम दाने की जरूरत होती है। यह मात्रा भी मौसम पर निर्भर करती है, जब खेतों में फसल कटने का समय होता है तब इनको अलग से दाना देने की जरूरत नहीं होती है। लेकिन बरसात के समय हमें दाने पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत होती है। 15–20 दिनों तक के चुजे को मुँह में दाना देना पड़ता है, जबकि बड़ा होने पर जमीन पर छिड़क देने पर खा लेते हैं।

कबूतर का बच्चा 20 दिन बाद दाना चुगना शुरू कर देता है एवं एक महीने में उड़ना शुरू कर देता है। कबूतर 2–2.5 महीने में अंडा देना शुरू कर देती है यह 3–4 दिन में 2 अंडे देती फिर अंडे को सेने लगती है। कबूतर के अंडे से चूजा 24 दिनों में बाहर आती है। फिर कबूतर 15–20 दिनों तक चुजे की देखभाल करती है। इसके बाद चूजा माँ से अलग होकर अपना दाना चुगने लगती है। इसके बाद फिर कबूतर अंडा देना शुरू करती है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष 7–8 बार कबूतर अंडा देती है, जिससे एक जोड़ी कबूतर से 10–12 चूजे प्रत्येक वर्ष किसान ले लेते हैं।

घरः– किसान कबूतर के लिए छत पर एक झोपड़ी बना देते हैं, जिसमें छोटे–छोटे खाने बना देते हैं। कुछ लोग मकान के छज्जे पर इसके लिए घर बनाते हैं। फर्श पर पुआल या कुट्टी बिछा देने से साफ एवं सूखा फर्श मिलता है।

बीमारीः– यदि घर की सफाई अच्छी तरह से की जाये तो बीमारी होने की संभावना कम होती है। गंदगी रहने पर पैखाने के रास्ते में कीड़ा हो जाता है।

घर में बांस लगा दिया जाता है, जिस पर कबूतर बैठकर प्रकृति का अनुभव लेता है। कबूतर घर के आगे टब में या स्थायी पानी संग्रह करने की एक संरचना बना दी जाती है, जिसमें कबूतर पानी पी लेता है एवं स्नान भी करता है।

कृषि विविधिकरण

कृषि विविधिकरण का तात्पर्य है हमेशा एक से ज्यादा फसल उगाना एवं साथ में दूसरे व्यवसाय को अपनाना जिससे कि जोखिम कम होता है एवं लाभ ज्यादा होता है। इसके तहत निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं–

बहुफसली खेतीः– एक साल में एक ही खेत में दो या अधिक फसलों के एक के बाद एक लेने को बहुफसली खेती कहते हैं। इससे हमें प्रति इकाई क्षेत्र से इकाई समय में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। बहुफसली खेती से किसान भाई कुछ बातों को अवश्य ध्यान रखें। जैसे– एक ही फसल बार–बार न उगायें, वार्षिक फसल चक्र में एक फसल दलहन अवश्य लगायें, एक चारा फसल लें ताकि अपने पशु को आहार दे सकें। खेती की लागत कम करने के लिए सब्जी जैसी फसल बीच–बीच में उगायें ताकि लगातार आमदनी बनी रहे। जैसे विभिन्न सब्जी उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी समुचित प्रयास करते रहें।

पशुपालनः– उन्नत नस्त के पशु के चयन, उचित देखभाल एवं प्रबंधन, संतुलित आहार एवं वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग कर पशुपालन में अच्छा खासा मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है।

उद्यानिकीः– फसल उत्पादन के साथ बागवानी को अपनाने से खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ–साथ अधिक लाभ कमाया जा सकता है। किसान भाई बागवानी तकनीकों फल, सब्जियों की नई किस्मों सजावटी पौधों, मशालों, बेमौसमी सब्जी एवं फूलों की खेती इत्यादि को अपनाकर कृषि में विविधता ला सकते हैं।

मुर्गीपालनः– प्रारंभ में मुर्गीपालन व्यवसाय घर के आँगन/पिछवाड़ों में छोटे स्तर पर किया जाता था तथा आज भी किया जा रहा है। इस कार्य में महिलाएँ काफी जुड़ी हुई है। हाल के वर्षों में यह एक उद्यम के रूप में उभरा है। व्यवसायिक रूप से अंडा एवं मांस के लिए मुर्गीपालन किया जाने लगा है। मुर्गीपालन से प्राप्त मुर्गी खाद की भी मांग बढ़ रही है। यह कम लागत में काफी लाभदायक व्यवसाय है एवं इस व्यवसाय में आय की प्राप्ति भी शीघ्र होने लगती है। उन्नत नस्ल की मुर्गियों का चयन कर किसान भाई ज्यादा लाभ ले सकते हैं।

मशरूमः– मशरूम की खेती एक अपेक्षाकृत नई विधा है। यह एक खाने योग्य फफूँद है। यह काफी पौष्टिक होता है एवं औषधीय गुण से परिपूर्ण होता है। इसकी खेती के लिए बहुत कम भूमि की आवश्यकता पड़ती है। महिलाओं के लिए यह एक उपयोगी व्यवसाय है। घर के पिछवाड़े में एक झोपड़ी बनाकर अथवा खाली पड़े कमरे में इसकी खेती की जा सकती है। इसे अपनाकर किसान भाई अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

वर्म एवं वर्मीकम्पोस्टः– किसान यदि वर्म एवं वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन कर न केवल अपने खेत की मृदा स्वस्थ रख सकते हैं बल्कि इसका विपणन कर अतिरिक्त लाभ भी कमा सकते हैं। बेकार कार्बनिक पदार्थ जैसे– पुआल, भूसा, सूखीघास, जल कुम्भी, सब्जी के छिलके, पशुओं के मलमूत्र आदि से केंचुआ की

सहायता से वर्मीकम्पोस्ट बनाया जाता है। आज वर्मी कम्पोस्ट व केंचुआ उत्पादन एक सरल, सस्ता व लाभकारी व्यवसाय बनता जा रहा है।

भंडारण एवं स्थानीय फसलों का मूल्य सम्बर्द्धन :– बागवानी, धान्य, दलहनी एवं तिलहनी फसलों की तुड़ाई/तैयारी उपरान्त क्षति को कम करने, मूल्य निरूपण एवं मूल्य वृद्धि तकनीक का प्रयोग कर किसान भाई अपने उत्पाद पर लाभ अधिक प्राप्त कर सकते हैं। कटाई के समय से काफी कम कीमत प्राप्त होता है। अतः किसान भाई कुछ महीनों के लिए इसे भंडारित कर लें तो अच्छा खासा मुनाफा कमा सकते हैं। इसके अलावा फल–सब्जी मौसमी होते हैं। अतः इसका परिरक्षित उत्पाद तैयार किया जाय तो बर्बादी को हम बचा सकते हैं तथा अतिरिक्त लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार बांका जिले के किसान बहुफसली खेती अपनाकर उद्यानिकी, पशुपालन, मुर्गीपालन, मशरूम उत्पादन, वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन एवं फसलों के मूल्य संवर्द्धन द्वारा कृषि विविधिकरण को प्रमुखता दे रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि बांका के किसान पारम्परिक विधियों एवं फसलों को कृषि के विविध आयामों के माध्यम से जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

एक मूर्ख खुदको बुद्धिमान समझता है, लेकिन एक बुद्धिमान व्यक्ति खुदको मूर्ख समझता है।

– विलियम शेक्सपीयर

मधुमक्खी पालन द्वारा उद्यमिता विकास

डॉ0 विष्णु देव सिंह एवं डॉ0 विनीता रानी

कृषि विज्ञान केन्द्र, पटना, बिहार

भारत गाँवो का देश है। यहाँ 70 प्रतिशत लोग गाँवो में निवास करते हैं और इनकी आजीविका कृषि पर आधारित है। देश को विकसित देश की श्रेणी में आने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुद्वढ़ करना आवश्यक है यह तभी संभव है जब कृषि आधारित उद्यमों का अंगीकरण सही दिशा एवं सही रूप में हो। जनसंख्या वृद्धि के साथ बेरोजगारी की समस्या दिनों दिन जटिल होती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में यह अत्यावश्यक है कि हम रोजगार के नये आयामों को ढूंढे। इस पर अगर हम गंभीरता से सोचते हैं तो हमारे सामने जिन कुटीर एवं लघु उद्यमों का नाम सामने आता है, उनमें मधुमक्खी पालन सबसे सस्ता, सुगम और सरल उद्यम प्रतीत होता है। मधुमक्खी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें स्थान, समय, पूँजी और श्रम की कम लागत है। शारीरिक दृष्टि से भी भारी न होने के कारण परिवार का कोई भी सदस्य इस उद्यम में आसानी पूर्वक भाग ले सकता है और कार्य को सुगमता पूर्वक सम्पन्न कर सकता है। इतना ही नहीं इस उद्यम को भूमिहीन व्यक्ति भी कम पूँजी लगाकर आसानी से कर सकता है। मधुमक्खी के एक बॉक्स में करीब 2500 से 3000 रू0 की लागत आती है और प्रति वर्ष प्रति बॉक्स 1500 से 2000 रू0 तक आमदनी हो सकती है।

अधिकांश लोग मानते हैं कि मधुमक्खी पालन से सिर्फ मधु एवं मोम की प्राप्ति होती है, लेकि मधुमक्खी पालन हमारे जीवन में अप्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष दोनों रूपों में लाभदायक है। मधुपालन में प्रत्यक्ष रूप से हमें शहद एवं मोम तथा अप्रत्यक्ष रूप से रॉयल जेली (बहुमूल्य पौष्टिक पदार्थ), डंक–विष के साथ प्रोपोलिस आदि भी प्राप्त होता है। चूँकि इन पदार्थो की मांग विदेशी बाजार में अत्यधिक है, अतः मधुमक्खी पालन से विदेशी मुद्रा भी प्राप्त किया जा सकता है। मधुमक्खी पालन एक ऐसा उद्यम है जिसमें स्वंय के साथ पड़ोसी को भी लाभ मिलता है। मधुमक्खी पालन के प्रसार से छोटे–छोटे उद्यम यथा मोमबत्ती उद्योग, लोहारगिरी, दर्जी को भी बढ़ावा मिलता है। अतः स्वरोजगार एवं अतिरिक्त आय हेतु मधुमक्खी पालन एक उत्तम उद्यम है।

शोध अवधारणाः–

1. अध्ययन के आधार पर रोजगार सृजन का आकलन करना।
2. उद्यम में लागत एवं लाभ का आकलन करना।
3. उद्यम को प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक सुझाव।

शोध तरकीबः–

यह शोध पटना जिले में 12 मधुमक्खी पालकों से लिये गये आकड़ों पर आधारित है। कृषि विज्ञान

केन्द्र, पटना द्वारा वर्ष 2010 से 2015 तक कुल 05 प्रशिक्षण **मधुमक्खी पालन एक व्यवसाय** विषय पर आयोजित किया गया जिसमें करीब 36 मधुपालाकों द्वारा इस उद्यम को सफलतापूर्वक किया जा रहा है। 36 मधुपालकों में से 12 मधुपालकों को अध्ययन हेतु नमूना के तौर पर चयनित कर उनसे विहित प्रश्नो पर पूछताछ कर आकड़ा संग्रहित किया गया।

अध्ययन में मधु का औसत मूल्य 106 रू0 प्रति किलो तथा औसत मूल्य प्रति बॉक्स 2685 रू0 पर अध्ययन का निष्कर्ष निकाला गया है।

रोजगार सृजनः–

रोजगार का आकलन करने पर पता चलता है कि करीब 100 मधुपेटिका पर कम से कम 08 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होता है। अगर वर्ष भर का आकलन किया जाए तो हमे मालूम होता है कि वर्ष भर में औसत 117 मानव दिवस का सृजन होता है। (तालिका–1) इस 117 मानव दिवस में 67.52 प्रतिशत महिलाओं द्वारा जबकि 32.48 प्रतिशत पुरूषों द्वारा कार्य सम्पादित होता है। इसमें कुल 61.54 प्रतिशत कार्य दिवस परिवार मजदूर द्वारा तथा 38.46 प्रतिशत पारिश्रमिक मजदूर द्वारा सम्पन्न होता है।

तालिका–1 वार्षिक मजदूर लागत (प्रतिदिन/उद्यम)

क्र. सं0	मजदूर	औसत मानव दिवस (08 घंटा)		
		पुरूष	महिला	कुल
1	परिवार मजदूर	50 (42.74)	22 (18.60)	72 (61.64)
2	परिश्रमिक मजदूर	29 (24.78)	16 (13.68)	45 (38.48)
कुल		79 (67.62)	38 (32.68)	117 (100.0)

आय एवं लागतः–

तालिका–2 में तीन वर्ष तक लगने वाले व्यय एवं उससे प्राप्त आय का विवरण दर्शाया गया है। प्राप्त आंकड़ा से यह प्रदर्शित होता है कि उद्यम को स्थापित करने में औसत खर्च प्रथम वर्ष 6085.30, द्वितीय वर्ष 6856.45 तथा तृतीय वर्ष 5722.30 रू0 आता है। कुल खर्च में स्थायी खर्च 10 से 12 प्रतिशत तथा अस्थाई खर्च 66 से 69 प्रतिशत आता है जबकि कार्यकारी मूल्य पर सूद 13 से 14 प्रतिशत तथा स्थायी मूल्य पर सूद 8 से 10 प्रतिशत समेत है। इससे यह साबित होता है कि यह उद्यम मजदूर आधारित है। अगर विक्रय मूल्य को देखते हैं तो पाते है कि प्रथम वर्ष में विक्रय मूल्य 12759 रू0, द्वितीय वर्ष में 13150 रू एवं तीसरे वर्ष में 13952 रू0 क्रमशः होता है। इससे यह साबित होता है कि यह उद्यम लाभकारी है। प्रथम वर्ष में लाभ 6673.70 रू0, द्वितीय वर्ष में 6293.55 एवं तीसरे वर्ष में 8229.70 रू0 है।

तालिका–2 तीन वर्ष में औसत लागत एवं बचतः–

क्र. सं.	विवरण		प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	औसत
1.	स्थाई खर्च (रू.) में					
.	ह्रास		112.50 (1.85)	112.30 (112.30)	112.30 (1.96)	112.30 (1.80)
इ	सूद		570.00 (9.36)	570.00 (8.31)	570.00 (9.16)	570.00 (9.16)
कुल			682.30 (11.21)	682.30 (9.95)	682.30 (11.92)	682.30 (10.96)
2.	अस्थाई खर्च (रू) में					
.	कच्चा सामाग्री		318.50 (5.23)	452.15 (6.59)	425.00 (7.43)	398.55 (6.41)
ठ	मजदूर		4215.00 (69.27)	4785.00 (69.79)	3790.00 (66.23)	4263.34 (68.53)
ढ	सूद		870.00 (14.29)	937.00 (13.67)	825.00 (14.42)	877.00 (14.11)
कुल			5403.00 (88.79)	6174.00 (90.05)	5040.00 (88.08)	5539.23 (89.04)
3. कुल विक्रय 12759.00 लाभ/हानि + 6673.70		कुल खर्च (रू) में	6085.30 (100.00)	6856.45 (100.00)	5722.00 (100.00)	6221.35 (100.00)
		13150.00	13952.00	13287.00		
		+ 6293.55	+ 8229.70	+ 7065.65		

निष्कर्षः– अध्ययन से साफ जाहिर है कि यह उद्यम लाभकारी होने के साथ आय प्राप्ति का सबसे सफल उद्यम है। यह उद्यम स्वरोजगार प्राप्ति हेतु कम लागत पर सुगम उद्यम है। जरूरत है ग्रामीण युवा एवं युवतियों को जागरूकता के साथ प्रशिक्षण के माध्यम से इस उद्यम को बढ़ाने की।

स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे ले कर रहूँगा।

– बाल गंगाधर तिलक

डेयरी व्यवसाय में बछड़ो-बछड़ियों का वैज्ञानिक प्रबंधन

डा. संजीव कुमार, डा. कुमार रविरंजन, डा. संजय कुमार एवं डा. आर. के. निराला
कृषि विज्ञान केन्द्र, नालदां, बिहार

डेयरी व्यवसाय की सफलता बछड़ों के उचित पालन–पोषण पर बहुत निर्भर है। साथ ही डेरी फार्मिंग से अधिक लाभ उठाने के लिए बछड़ो की मृत्यु दर को कम करना भी आवश्यक है। बछड़ो का पालन–पोषण सही ढंग से करने से जहां पशु का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। वहां दूसरी ओर नस्ल के वंश परम्परागत गुणों में भी वृद्धि हो जाती है।

बछड़ों की वैज्ञानिक देखभाल कैसे करें

बछड़ो को माँ से अलग करना – बछड़े के पैदा होते ही या जन्म के चार–पांच दिन पश्चात थन से दूध पीना छुड़ा देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से दुधारु पशु के दुग्ध उत्पादन के सही आंकड़े प्राप्त किए जा सकते है और जिससे अच्छी नस्ल की जानकारी शीघ्र प्राप्त की जा सकती है। बछड़ों को अगर थन से ही दूध पीने दिया जाता है तो यह अनुमान करना अत्यन्त मुश्किल प्रतित होता है कि बछड़े ने कितना दूध पिया है। यदि बछड़ा अधिक दूध पी लेता है तो वह अस्वस्थ हो सकता है और कम दूध पीने से कुपोषण से ग्रसित हो सकता हैं। संकर गायों तथा विदेशी गायों से बछड़ें अलग करने में परेशानी नहीं होती है परन्तु देसी गायों से बछड़ों को अलग करने में थोड़ी समस्या होती है। बछड़े को अलग दूध पिलाने से मां का बछड़े के प्रति महत्व को भी रोका जा सकता है। माँ के बछड़े को अलग करके सर्वप्रथम बछड़े को निप्पल से तथा रबड़ की नील से दूध पिलाना चाहिए परन्तु कुछ बछड़े इस प्रकार दूध नहीं पी पाते है। उन्हे मुंह में दो उंगली डालकर दूध पिलाना चाहिए। दूध धीरे–धीरे ही पिलाना चाहिए।

बछड़ो की मृत्यु दर कम करना – बछड़ों की मृत्यु डेरी व्यवसाय की एक प्रमुख समस्या है। जन्म के तुरन्त पश्चात की काफी संख्या में बछड़े मर जाते है क्योंकि अनेक प्रकार की संक्रामक बीमारियों का प्रभाव उन पर जल्दी पड़ जाता है। अगर बछड़ो के पोषण और प्रबन्ध पद्धति में सुधार लाया जाये तो बछड़ों में रोग प्रतिरोधक क्षमता को उत्पन्न किया जा सकता है और दुधारु पशु को विभिन्न बीमारी से बचाया जा सकता है ।

नाभिका बन्द करना– नाभि द्वारा संक्रमण या बीमारी फैलने की प्रबल सम्भावना रहती है क्योंकि यहां से जीवाणु खून में पहुंच कर भयंकर बीमारी पैदा कर देते है। काफी संख्या में बछड़ो को नाभि की बीमारी हो जाती है, जिससे कि वे मृत्यु के शिकार हो जाते है। बछड़े के पैदा होने के तुरन्त बाद ही कीटाणु नाशक दवाइयों से कटी हुई नाभि की सफाई करनी तो आवश्यक है। साथ ही टिंचर आयोडीन में भीगा हुआ फोआ भी नाभि में धुसा देना चाहिए। शरीर से कुछ दूरी पर नाभि को धीरे–से बांध देना चाहिए। रूई

का फोआ नाभि नाल अपने आप कुछ दिन में सूख कर गिर जाता है और नाभि ठीक हो जाती है। इस प्रकार नाभि द्वारा संक्रमण को रोका जा सकता हैं।

बछड़ो की आवास व्यवस्था– बछड़ो को माँ से अलग करने के पश्चात बछड़ो को अलग रहने की व्यवस्था करनी चाहिए। तीन माह तक बछड़ो को माँ से अलग रखना चाहिए। इन बछड़ो को जमीन की सतह से ऊपर गौशाला में रखा जाये तो स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा रहता है। बछड़ो को सफेद दस्त की बीमारी भी कम होती है। वयवसायिक फार्मों पर बछड़ो को बड़े–बड़े बाड़ो में रखा जाता है। लेकिन उनको अलग से दूध पिलाया जाता है यदि सबकों एक साथ दूध पिलाया जाएगा तो ताकतवर बछड़े अधिक दूध पी जाएंगे और कमजोर तथा धीरे पीने वाले बछड़े पीछे रह जाएंगे। बछड़ो को ताजा स्वच्छ पानी भरपूर मात्रा में पिलाया जाए।

खीस पिलाना– नवजात बछड़ो के स्वास्थ्य के लिए खीस पिलाना सेहत के लिए वरदान है, इसका प्रभाव न केवल स्वास्थ्य पर ही पड़ता है अपितु इससे बछड़ो की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। अतः जन्म के दो घंटे के अन्दर बछड़ो को खीस पिला देना चाहिए। यह खीस चार–पांच दिन तक अवश्य पिलाना चाहिए। खीस से बछड़े के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता की बढ़ोतरी होती है और इससे अनेक बीमारियों से बचाव हो जाता है। पौष्टिकता की दृष्टि से खीस का काफी महत्व है। इसमें रेचक (दस्तावर) गुण होता है, जिससे बछड़े के पेट में इकट्ठे मल आदि की सफाई हो जाती है। यदि गाय किसी कारणवश दूध नहीं देती है तथा बछड़ो को अपनी माँ का दूध नहीं मिल पाता है तो इस स्थिति में दो अण्डों में एक औंस अरण्डी का तेल मिलाकर खिलाना चाहिए।

बछड़े को दूध पिलाना– बछड़े के लिए दूध सर्वश्रेष्ठ संतुलित राशन है। अतः बछड़े को पांच दिन पश्चात दूध पिलाना आरम्भ कर देना चाहिए। दूध पर पाले गये बछड़ो की बढ़ोतरी सही होती है। 1.39 किलो ग्राम दूध के शुष्क पदार्थ के बदले एक किलों ग्राम शरीर भार बढ़ता है। दूध को बछड़े की पाचन क्रिया आसानी से पचा लेती है। अतः वैज्ञानिको द्वारा सुझाव होता कि बछड़े को पर्याप्त मात्रा में दूध मिलना आवश्यक है।

प्रथम तीन महीने के दौरान में बछड़ो को पर्याप्त मात्रा में दूध दिया जाए या अच्छे किस्म के प्रोटीन से युक्त एवं कम रेशे वाले काफ स्टार्टर के साथ चार से पांच सप्ताह तक कम से कम 110 लीटर शुद्ध दूध पिलाया जाये। खीस के अलावा बछड़े को 7–10 सप्ताह की उम्र तक कम से कम शुद्ध दूध 160 लीटर पिलाना बहुत आवश्यक है।

अलग किये गये बछड़ों को सामान्य तापमान के बराबर गरम दूध पिलाना चाहिए। विशेष कर खनिज तत्व जैसे (Fe, Cu, Mg, Mn, Zn) भी दिये जाने चाहिए। 100 ग्राम शुष्क पदार्थ के बराबर हरा चारा 15 दिन की उम्र के बाद से रोज शुरू कर देना चाहिए जिससे कि अमाश्य के विकास में सहायता मिलती है।

दूध पिलाने का तालिका

सारिणी–1

आयु (दिन)	खीस (लीटर)	दूध (लीटर)
0–4	शरीर भार के दसवें भाग के बराबर	–
4 दिन से ऊपर	–	60 किलो ग्राम शश्री भार तक के बच्चे को शरीर भार के 1/10 भाग के बराबर

उपरोक्त सारणी (1) के द्वारा अच्छे परिणाम डेयरी व्यवसायों को प्राप्त हुए है लेकिन यह पद्धति काफी खर्चीली है।

सारिणी–2

शरीर भार (कि.ग्रा.)	आयु (दिन)	खीस (लीटर)	दूध (लीटर)
30 तक	0–4	शरीर भार के दसवें भाग के बराबर	–
30 तक	5–90	–	शरीर भार के दसवं भाग के बराबर
31–60	–	–	1/20 भाग के बराबर

उपराक्त सारणी (2) के आधार पर 26 कि.ग्रा. जन्म के भार वाले बछड़े को 3 महीने की आयु में 54 कि.ग्रा. का किया जा सकता है। इस प्रकार से बछड़ो–बछड़ियों का पोषण प्रबंधन करने से ना केवल बछ़ड़ो मे मृत्यु दर कम किया जा सकता है ब्लकि बछ़ड़ो का स्वास्थ भी उतम होगा जिससे डेयरी व्यवसाय मे ज्यादा मुनाफा प्राप्त किया जा सकेगा।

मैं ऐसे धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सीखाये।

– डा0 भीमराव अम्बेदकर

गृह वाटिका द्वारा स्वास्थ्य रक्षा

डा. विनीता रानी

कृषि विज्ञान केन्द्र, बाढ़ पटना, बिहार

घर के चारों ओर उपलब्ध सीमित भूमि का उपयोग सब्जी, फल तथा पुष्पोत्पादन में किया जाता है। इस प्रकार से बनायी गयी बगिया ही गृह वाटिका कहलाती है। गृह वाटिका का मुख्य उद्देश्य घरेलू आवश्यकतानुसार, ताजी सब्जियां तथा फल–फूल प्रदान करना है। 5 सदस्यों वाले एक परिवार के लिए सब्जियों की वार्षिक आवश्यकतानुसार लगभग 250 वर्ग मीटर भूमि की आवश्यकता होती है। महिलाओं के लिए गृह वाटिका में सब्जी तथा फल लगाना रूचिकर, लाभप्रद एवं उपयोगी है।

गृह वाटिका से लाभः–

- घर के पिछवाड़े या आस–पास बेकार पड़ी भूमि का सदुपयोग होता है
- ताजी सब्जियां तथा फल प्राप्त होने से घरेलू आवश्यकता की पूर्ति होती रहती है
- रसोई घर व स्नानघर से निकले पानी को क्यारियों में लगाया जा सकता है। इससे एकत्रित अनुपयोगी जल का निष्पादन हो जाता है
- रसोई घर के निरर्थक पदार्थो से मूल्यवान कम्पोस्ट का निर्माण होता है
- सब्जियों पर होने वाले व्यय को कम किया जा सकता है
- सब्जियों के अधिक उत्पादन से आय प्राप्त की जा सकती है
- महिलाओं के खाली समय का सदुपयोग होता है।

बाध्यताः–

- शहरो में भूमि का सीमित होना
- भूमि का आकार, क्षेत्र एवं स्थान का कम होना
- पशुओं का अतिक्रमण
- गृह वाटिका लगाने हेतु सब्जियों एवं फल की उत्पादन तकनीक की जानकारी का अभाव

स्थान का चुनावः–

गृह वाटिका के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहां सींचाई का साधन हो तथा प्रकाश की उपलब्धता हो। 250–300 वर्गमीटर जमीन में नुकीले तार की बाड़ बनाकर गृह वाटिका की सुरक्षा की जा सकती है।

गृह वाटिका के लिए खाद एवं उर्वरक की आपूर्तिः–

गृह वाटिका में सब्जियों एवं फलों को उगाने के लिए कम्पोस्ट या गोबर की खाद उत्तम मानी जाती है। गृह वाटिका में पीछे की ओर यदि एक घनमीटर आकार का गड्ढ़ा तैयार कर लें तो लगभग 50–60 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद वर्ष में 3–4 बार मिल जाती है। इसमें रसोई घर से निकलने वाले सब्जियों के छीलन, चाय की पत्ती तथा घर के अन्य जैव विघटनशील वस्तुओं को डालकर सड़ाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की खल्लियां जैसे नीम की खल्ली, मूंगफली की खल्ली आदि का प्रयोग भी किया जा सकता है।

गृह वाटिका हेतु फसल चक्रः–

(क) बारहमासी खेतः–

- सहजन, केला, पपीता, कढ़ी पत्ता,
- वर्षभर बिना अंतराल के प्रत्येक खेत में कोई न कोई फसल अवश्य उगाई जा सकती है। साथ ही, कुछ खेत में एक साथ दो फसलें (एक लम्बी अवधि वाली और दूसरी कम अवधि वाली) भी उगाई जा सकती है।

(ख) यदि वर्ष में दो सब्जी लगाना होः–

लौकी (फरवरी–अक्टूबर)	आलू (अक्टूबर–मार्च)
भिण्डी (जून–सितम्बर)	मटर (अक्टूबर–जनवरी)
टमाटर (जून–नवम्बर)	प्याज (नवम्बर–फरवरी)
बैंगन (जून–फरवरी)	लहसुन (दिसम्बर–मई)
मिर्च (जुलाई–फरवरी)	

(ग) यदि वर्ष में तीन सब्जी लगाना होः–

मिर्च (जून–अक्टूबर)	आलू (नवम्बर–मार्च)
भिण्डी (मार्च–जून)	भिण्डी (जून–सितम्बर)
गाजर (सितम्बर–दिसम्बर)	टमाटर (जनवरी–मई)
भिण्डी (जुलाई–सितम्बर)	मिर्च (अक्टूबर–दिसम्बर)
बैंगन (जनवरी–मार्च)	टमाटर (जुलाई–अक्टूबर)
पत्तागोभी (नवम्बर–फरवरी)	भिण्डी (मार्च–जून)
प्याज (जनवरी–अप्रैल)	भिण्डी (मई–अगस्त)
टालू (अक्टूबर–फरवरी)	बैंगन (जून–अक्टूबर)

मटर (अक्टूबर–दिसम्बर)　　मिर्च (जनवरी–जून)

(घ) यदि वर्ष में चार सब्जी लगाना हो:–

मूली (जून–जुलाई)　　मेथी (अगस्त–अक्टूबर)

पालक (नवम्बर–जनवरी)　　ककड़ी (फरवरी–मार्च)

गाजर (अगस्त–अक्टूबर)　　फासबीन (नवम्बर–जनवरी)

मूली (फरवरी–मार्च)　　ककड़ी (अप्रैल–जुलाई)

सब्जी वाटिका का नियोजन:–

गृह वाटिका में सब्जियों की बागवानी सुनियोजित ढ़ंग से की जानी चाहिए। गृह वाटिका में सब्जी उगाने का मुख्य उद्देश्य पूरे परिवार के लिए दैनिक आवश्यकतानुसार सभी सब्जियां उपलब्ध कराना है। सब्जी वाटिका में मात्रा, विविधता तथा पोषण तत्वों के अनुसार सब्जियां प्राप्त करने के लिए सब्जी वाटिका का नियोजन निम्न प्रकार से करना चाहिए:

- सब्जी वाटिका के लिए उपलब्ध भूमि का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि भूमि के प्रत्येक भाग से साल भर सब्जियां मिलती रहें। भूमि के बेहतर इस्तेमाल के लिए जड़ व कन्द वाली सब्जियां मेड़ों पर तथा बेलदार सब्जियां (तोरई, लौकी, खीरा, सेम आदि) बाड़ के समीप लगानी चाहिए।
- सब्जियों का चयन पोषण तथा पारिवारिक रूचि के अनुसार करना चाहिए।
- हरी सब्जियों का चयन तथा कटाई इस क्रम में होनी चाहिए कि दूसरी हरी सब्जियां मिलती रहें।
- कम अवधि वाली सब्जियों को थोड़े–थोड़े अंतराल पर, कम क्षेत्रफल में कई बार बोना चाहिए ताकि लम्बे समय तक उनकी सुलभता बनी रहें।

सघन फसल चक्र के अनुसार ही सब्जियाँ बोनी चाहिए ताकि क्यारी का कोई भी भाग अधिक समय तक खाली न रहे।

इस प्रकार गृह वाटिका लगाकर, सालों भर ताजी, हरी एवं पौष्टिक सब्जियाँ खाकर हम अपने स्वास्थय की रक्षा कर सकते हैं।

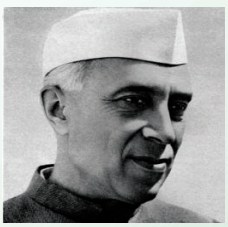

संस्कृति मन और आत्मा का विस्तार है।

– जवाहरलाल नेहरु

विभिन्न सब्जियों के प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग का पोषण मान

मूली	मटर	गाजर	मेथी	पालक	पत्तागोभी	तोरई	फूलगोभी	बैंगन	भिण्डी	टिंडा	करेला	ग्वार	सेम	लौकी	खीरा	टमाटर (हरा)	मिर्च (हरी)	सब्जी का नाम
17	93	48	49	26	27	17	30	24	35	21	25	16	48	12	13	23	29	उर्जा (किलो कैलोरी)
3.4	16	10.6	6.0	2.9	4.6	3.4	4.0	4.0	6.4	3.4	4.2	11	6.7	2.5	2.5	3.6	3	काबोहाइड्रेट (ग्रम)
0.7	7.2	0.9	4.4	2	1.8	0.5	2.6	1.4	1.9	1.4	1.6	3.2	3.8	0.2	0.4	1.9	2.9	प्रोटीन (ग्रम)
0.1	0.1	0.2	0.9	0.7	0.1	0.1	0.4	0.3	0.2	0.2	0.2	0.4	0.7	0.1	0.1	0.1	0.6	वसा (ग्रम)
3	83	1890	2340	5580	120	33	30	74	52	13	126	198	187	0	0	192	175	कैरोटीन (माइक्रोग्रम)
15	9	3	52	28	124	5	56	12	13	18	88	47	9	0	7	31	111	विटामिन सी (मिग्रा.)
35	20	80	395	73	39	18	33	18	66	25	20	130	210	20	10	20	30	कैल्शियम (मिग्रा.)
0.4	1.5	1.03	1.93	1.14	0.8	0.39	1.23	0.38	0.35	0.9	0.61	1.1	0.8	0.46	0.6	1.8	4.4	आयरन (मिग्रा.)

ब्रायलर फार्मिंग : लाभकारी व्यवसाय

डा. संजीव रंजन
कृषि विज्ञान केन्द्र, हलसी, लखीसराय, बिहार

मुर्गी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिसको कम पूंजी में, कम खर्च मे, कम मेहनत में और कम जगह में शुरू किया जा सकता है। यह व्यवसाय आय का अतिरिक्त साधन बन सकता है। बहुत कम लागत से शुरू होने वाला यह व्यवसाय लाखों–करोंड़ों का मुनाफा दे सकता है। इसमें शैक्षणिक योग्यता और पूंजी से अधिक अनुभव और मेहनत की दरकार होती है। आज के समय में बेरोजगारी बड़ी समस्या है। ऐसे में युवा वर्ग मुर्गीपालन को रोजगार का माध्यम बना सकते हैं। आज भारतवर्ष में एक अनुमान के मुताबिक लगभग 50 लाख लोग मुर्गी पालन रोजगार से जुड़े हुए हैं। एक अध्ययन के मुताबिक मुर्गीपालन व्यवसाय लगभग 14 प्रतिशत वृद्धि दर से बढ़ रही है और इसमें असीम संभावनाएँ हैं।

मुर्गीपालन से हमारा तात्पर्य किसी खास उद्धेश्य जैसे अंडों का उत्पादन या माँस उत्पादन हेतु मुर्गियों का पालन पोषण करने से है। मुर्गीपालन को व्यवसाय के रूप में अपनाने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आपको अंडे का उत्पादन करना है या माँस का। अंडे देने वाली मुर्गियों को लेयर चिकन कहा जाता है। यह मुर्गियाँ करीब 15–22 सप्ताह में अंडे देना प्रारम्भ कर देती है। यदि चिकन का उत्पादन माँस के रूप में करना चाहते हैं तो ब्रायलर मुर्गियों का पालन करना होगा। ब्रायलर उस नर या मादा पक्षी को कहते हैं जिसका शारीरिक वजन छः से आठ सप्ताह की उम्र में करीब ढाई किलोग्राम दाना खाकर, डेढ़ किलोग्राम के लगभग वजन का हो जाता है और माँस के लिए बेचा जाता है। इस उद्योग में कम से कम अवधि के भीतर बिक्री योग्य वजन वाले ब्रायलरों का उत्पादन करने की होड़ लगी हैं। अतः कुक्कुट पालक को इस दौड़ में बने रहने तथा आगे बढ़ने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए :–

1. **चूजों का चयन :** चूजे किसी सरकारी या अन्य मान्यता प्राप्त हैचरी से ही खरीदें, जहाँ उत्तम श्रेणी के हाइब्रिड चूजे तैयार किये जाते हों। एक दिन के चूजे का वजन लगभग 32 से 40 ग्राम का होना चाहिए।
2. **चूजों के आने से पहले का प्रबन्ध :** चूजों को फार्म में लाने से पहले ठीक ढंग से फार्म की सफाई अवश्य कर लें। मुर्गीघर की सभी दीवारें, छत, फर्श को रगड़ कर साफ करना चाहिए तथा कीटाण ुनाशक अथवा फिनाईल के घोल का छिड़काव कर दें। फर्श के पूरी तरह सूख जाने के बाद उस पर लकड़ी का बुरादा बिछा दें। 250 पक्षियों के लिए करीब एक से डेढ़ बोरी लकड़ी का बुरादा पर्याप्त रहता है।
3. **चूजों का रख–रखाव :** चूजों के आते ही उसे बक्सा समेत कमरे के अन्दर ले जायें, जहाँ ब्रूडर रखा हो। ब्रूडर के चारों ओर 2 फिट की दूरी पर डेढ़ फिट ऊँचा चिक गार्ड लगा होना चाहिए। चिक गार्ड को 8 से 10 दिन बाद हटा लेना चाहिए। चूजों को एक – एक करके इलेक्ट्रल पाउडर या

ग्लूकोज मिला पानी पिलाकर ब्रूडर के नीचे छोड़ दें।

4. पहले सप्ताह में ब्रूडर में तापमान 90^0F होना चाहिए। प्रत्येक सप्ताह 5^0F कम करते हुए 70^0F तक जाना चाहिए। इसके बाद ब्रूडर की आवश्यकता नहीं रहती है।
5. बारह वर्ग फिट के एक ब्रूडर जिसमें 60 वाट के तीन तथा 100 वाट के दो बल्ब लगे हों, उसके नीचे करीब 250 चूजे आ जाते हैं ब्रायलर घर का तापमान 70^0F तथा नमी का स्तर 60–70% रखना चाहिए।
6. प्रथम 15 घंटे तक चूजों को सिर्फ चीनी का पानी ही देना चाहिए। आहार बिल्कुल न दें। प्रति साढ़े चार लीटर पानी में आधा कप चीनी मिलाकर दें। जब चूजे सारा पानी पी लें, तब उसके 5–6 घंटे बाद खाने के लिए देना चाहिए।
7. निकटतम पशु चिकित्सक की सलाह लेकर पहले 2 दिन के पानी में ग्लूकोज, विटामिन तथा एण्टीवायोटिक्स का प्रयोग करें।
8. तीसरे दिन से फीडर में प्री–स्टार्टर दाना दें। प्री–स्टार्टर दाना 7 दिनों तक दें।
9. आठवें रोज से 28 दिन तक ब्रायलर को स्टार्टर दाना दें। 29 से 42 दिन या बेचने तक फिनिशर दाना खिलायें।
10. पाँचवें या छठे दिन चूजे को रानीखेत का टीका तथा 14वें या 15वें दिन गम्बोरो का टीका आँख तथा नाक में एक–एक बूँद दें।
11. ब्रायलर चूजों को 24 घंटे रोशनी की आवश्यकता होती है जब तक कि वे बाजार में बिकने योग्य न हो जाये। प्रत्येक 150 से 200 वर्ग फुट पर 7 से 8 फुट की उँचाई पर एक 40 वाट का बल्व लगाना चाहिए। जब ब्रायलर 2 सप्ताह के हो जायें तो 40 वाट के बल्व के स्थान पर 25 वाट का बल्व लगायें।
12. ब्रायलर को करीब 2 से 2.5 ग्राम पानी प्रति 1 ग्राम आहार की खपत पर चाहिए होता है। करीब 2 सप्ताह की उम्र तक के 250 चूजों के लिए 2 लीटर की क्षमता वाले 5 तथा 3 से 8 सप्ताह की उम्र के पक्षियों के लिए 5 लीटर की क्षमता वाले 5 पानी के बर्तनों की आवश्यकता होती है।
13. मुर्गीघर के दरवाजे पर एक बर्तन या नाद में फिनाईल का पानी रखें। मुर्गीघर में जाते या आते समय पैर धो लें। यह पानी रोज बदल दें।
14. ब्रायलरों की देख–रेख के बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य है फार्म का लेखा–जोखा रखना। फार्म का लेखा–जोखा न केवल लागत व आय को जानने के लिए बल्कि उत्पादन के उतार – चढ़ाव को जानने और भूलों का पहचानने व उन्हें सुधारने के लिए भी जरूरी है जिससे फार्म से अति उत्तम परिणाम प्राप्त किया जा सके और लाभ को बढ़ाया जा सके।

मखाना की उन्नत खेती

डा. सुनीता कुशवाह एवं डा. कुमारी शारदा

कृषि विज्ञान केन्द्र, बाँका, बिहार

मखाना उष्ण एवं आद्र जलवायु में होने वाली जलीय फसल है। फूल मखाना या मखाना फूल जिसे फॉम्सनट के नाम से भी जाना जाता है। यह लिलि कुल का पौधा है। इसे नीची जमीन में भारत, चीन तथा जापान में उगाया जाता है। प्राचीन काल से ही मिथिला क्षेत्र एवं उत्तरी बिहार मखाना की खेती के लिए विख्यात है। भारत के मध्य भाग प0 बंगाल और बंगलादेश में भी इसकी खेती की जाती है लेकिन भारत के कुल मखाना उत्पादन में करीब 80 प्रतिशत योगदान मिथिला क्षेत्र का ही है। उत्तरी बिहार खासकर दरभंगा, मधुबनी, पूर्णियां, कटिहार जिले के लिए यह एक नगदी फसल है। भारतवर्ष में 20000 हे0 क्षेत्रफल में मखाना की खेती होती है, जिससे 6000 मिट्रिक टन मखाना का बीज तथा प्रसंस्करण के बाद 2400 मि0 टन फूल मखाना तैयार होता है।

मखाना का उपयोग मुख्यतः भोजन में होता है। इसमें औषधि गुण भी पाये जाते हैं, परन्तु आजकल इसकी व्यवसायिक उपयोगिता भी काफी बढ़ गई है।

मखाना के पौष्टिक तत्व (100 ग्राम में)

कैलोरी –	400	वसा –	2 ग्राम
कैल्शियम –	6%	आयरन –	6%
सोडियम –	20mg	पोटैशियम –	800 मि0ग्रा0
रेशे –	6 ग्राम	प्रोटीन –	10 ग्राम

इसका उपयोग तलकर या भूनकर किया जाता है, जो खासकर उपवास में उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की सब्जी या खीर के रूप में किया जाता है। इसकी भण्डारण क्षमता बहुत अच्छी है और इसे हवा बंद डिब्बे में नमी एवं धूप से दूर रखकर कई महीनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

इसके बीजों का उपयोग खासकर आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है। यह पेचिष में लाभकारी है। यह षक्तिदायक एवं बंध्यता संबंधी समस्याओं से छुटकारा पाने में सहायक है।

यह एक ऐन्टीऑक्सीडेंड के रूप में कार्य करता

है। इसका पाचन सभी उम्र के लोगों के लिए आसान है। यह भूख बढ़ाता है तथा दस्त रोकने में भी लाभकारी है। यह रक्त चाप के नियंत्रण में सहायक है तथा कमर एवं घुटनों के दर्द को दूर करता है तथा गठिया में लाभकारी है। गर्भवती महिलाओं एवं प्रसव के बाद कमजोरी दूर करने के लिए मखाना के उपयोग की सिफारिष की जाती है।

मखाना में प्रोटीन, शर्करा, रेशे, मैग्नेशियम, पोटैशियम, फॉस्फोरस, आयरन एवं जस्ते की अधिकता होती है तथा सोडियम कम मात्रा में पाया जाता है। बेचैनी दूर करता है तथा अच्छी नींद आती है।

इसकी खेती स्वच्छ तालाबों और झीलों में की जाती है। तालाब या जलाशयों की चयन में यह ध्यान रखना चाहिए कि ये वर्षाऋतु में न तो बाढ़ग्रस्त हो और ग्रीष्मऋतु में पूर्ण रूप से सूख जाय। इसकी सफल खेती के लिए ग्रीष्मऋतु में जलाशयों में कम से कम 1.5 से 2.0 मीटर गहरा पानी होना अनिवार्य है। मखाना के लिए तालाब का तल कीचड़ युक्त होना चाहिए।

मखाना की उन्नत किस्म

सीतामढ़ी, सहरसा, कटिहार, पूर्णियाँ, सुपौल, किषनगंज और अररिया में कृषि जलवायवीय परिस्थितियाँ समान होने के कारण मखाना की खेती के लिए उपयुक्त है। वर्तमान में यहाँ के किसान स्थानीय बीज लगाते हैं, जिसकी उत्पादन क्षमता कम होती है और कम मुनाफा मिलने के कारण लोग इसकी खेती कम क्षेत्र में करने लगे हैं। किसानों की इस समस्या को दूर करने के लिए बिहार कृषि विश्वविद्यालय के द्वारा मखाना की सबौर मखाना–1 किस्म विकसित की गयी है जो मखाना उत्पादकों को अधिक लाभ देने वाली है।

सबौर मखाना–1

इस किस्म की विशेषताएँ– गोलाकार बड़ी पत्तियाँ गहरे बैगनी रंग के फूल, मध्यम आकार का फल, छोटे, अण्डाकार और चिकने बीज होते हैं। 240–250 दिन में यह फसल तैयार होता है। इसकी उत्पादन क्षमता 32–35 क्विं0 बीज प्रति हे0 है, जिसमें 55–60 प्रतिषत फूल मखाना प्राप्त होता है।

मखाना की सफल खेती के लिए कुछ मुख्य बातें:–

सस्य क्रियाएँ:

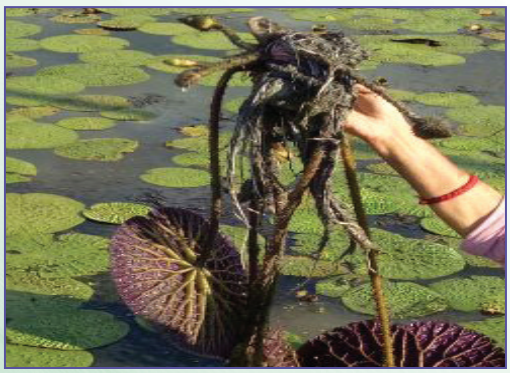

मखाना की खेती बीज द्वारा की जाती है। एक हेक्टेयर तालाब में खेती के लिए करीब 90–100 कि0ग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है। स्थानीय शब्दों में इसके बीज को तात या गोटी के नाम से जाना जाता है। मखाना की बुआई का समय अगस्त से अक्टूबर माह उपयुक्त है। बीजों की बुआई के पूर्व तालाब की सफाई कर लेनी चाहिए और शैवाल

आदि जलीय पौधे को हटा दिया जाता है। इस क्रिया के लिए पुआल से बने रस्सों को तालाब के आर–पार जल में होकर चलाया जाता है। जिससे सभी खरपतवार रस्से में लिपटकर तालाब के किनारे पर आ जाते हैं और बाहर निकाल दिया जाता है। मखाना बीज को तालाब में चारों तरफ छींट कर बुआई करते हैं, जो पानी में डूबकर एवं कीचड़ में फँस जाते हैं एवं वहीं अंकुरित होते हैं। अगर तालाब

बहुत बड़ा हो तो नाव पर चढ़कर बीज को तालाब के चारों ओर छीट दिया जाता है। बीज बोने के करीब 90–100 दिनों बाद पत्तियाँ पानी की सतह पर आ जाती है। पत्तियाँ निकलने के बाद पता चल जाता है कि कौन सी क्षेत्र खाली है और कौन सी क्षेत्र पौध घना है। जहाँ पौधा सघन हो वहाँ से पौध निकालकर खाली वाले भाग में पौध भर देना चाहिए, अन्यथा म खाना की उपज में काफी कमी जो जाती है। पौध से पौध एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी एक मीटर रखना चाहिए। अप्रैल–मई महीने तक तालाबों की पूरी जलीय सतह मखना के बड़े–बड़े और काँटेदार पत्तियों से ढक जाती है। मई महीने के अन्त में फूल आना प्रारंभ हो जाते हैं जो पानी के ऊपर रहते हैं। जून–जुलाई महीने तक फल लग जाते हैं। इस समय फसल की निगरानी करते रहना चाहिए। जैसे ही फल पकते हैं, पुष्पवृन्त तथा पत्तियाँ सड़ने लगते हैं और फल पानी पर तैरने लगते है। कुछ दिनों के बाद मखाना के गूदेदार फल भी सड़ने लगते हैं और मखाना का बीज फल से अलग होकर तालाब के तल में बैठ जाता है। एक फल में करीबन 20–25 बीज पाये जाते हैं। मखाना के फल स्पन्जी और अण्डाकार होते हैं जो कठोर काँटो से घिरे रहते हैं।

पौध संरक्षणः–

फरवरी–मई माह में जब मखाना के पत्ते मुलायम रहते हैं, उसी समय कीटों का आक्रमण अधिक होता है। कभी–कभी कीटों की अधिकता इतना बढ़ जाता है कि पूरा फसल नष्ट हो जाता है। इसके लिए किसान भाई तालाब या जलाशय के आर–पार दोनों ओर मंजू की रस्सी तानकर पत्तों पर थपथपाते हैं जिससे कीड़े पानी में डूबकर मर जाय।

मखाना बीजों का एकत्रीकरणः–

अगस्त महीने प्रायः मखाना के बीजों या गोटों का संग्रह प्रारंभ किया जाता है। मखाना बीजों का संग्रह तालाब की निचली सतह से किया जाता है। इसका संग्रह तालाब के अनदर डुबकियाँ लगाकर एक विशेष प्रकार के बने झाड़ू से तालाब की पंकयुक्त सतह को बुहारकर मखाना के बीजों को एकत्र कर छोटे–छोटे ढेर लगा लिये जाते हैं। इस छोटे नाव

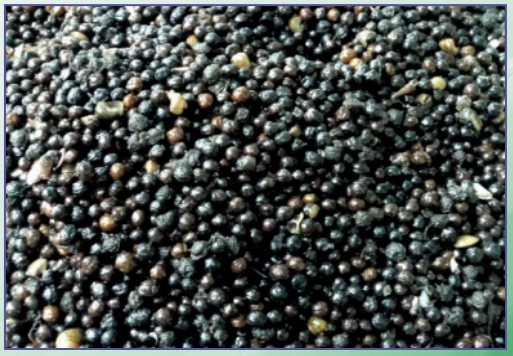

या डेगी का भी उपयोग में लाया जाता है। एकत्र मखाना के ढेर के पास संकेत के वास्ते एक लकड़ी गाड़ दिया जाता है। एकत्र मखाना बीजों को जाल की सहायता से पानी से बाहर निकाल लिया जाता है।

संसाधनः–

तालाबों से निकाले गये गोटों को एक जगह ढेर बनाकर धीरे–धीरे पाँव से दबाया जाता है ताकि उनके ऊपर आच्छादित झिल्ली झिल्ली टूट जल/झिल्ली से निकले मखाना बीजो (गोटों) को 1–2 बार साफ पानी से धोया जाता है। सफेद मखाना प्राप्त करने के लिए इसे कई क्रियाओं से गुजरना पड़ता है। साफ पानी से धोने के बाद इसे कुछ देर तक धूप में रखा जाता है। सूखने के बाद इसे टब या टबनुमा वर्त्तन में संसाधन हेतु रखा जाता है। कुछ दिनों तक गोटों पर नियमित रूप से पानी का छिड़काव किया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें बाहर निकालकर छायेदार जगहों पर हवा के सहारे सुखाया जाता है, क्योंकि धूप में सुखाने पर मखाना की गुणवत्ता खराब हो जाता है। सूखा मखाना बीज को सामान्यतः उसके आकार के आधार पर 5–6 श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। इसके बाद थोड़ा–थोड़ा करके धीमी आँच पर भूना जाता है। भूने हुए मखाना बीज को लकड़ी के मोटे तख्ते पर रखकर लकड़ी के हथौड़े से पीटते हैं। जब सफेद फूला हुआ मखाना (लावा) निकल आता है तो यही मखाना खाने योग्य होता है। इन सारी क्रियाओं को ध्यानपूर्वक करने के बाद मखाना की उपज प्रति हेक्टेयर 5–8 क्विंटल ली जा सकती है।

मखाना के विभिन्न उपयोगः–

मखाना के व्यंजन

मखाना का उपयोग भूनकर खाने तथा विविध व्यंजन के रूप में होता है।

मखाना–पनीर की सब्जी

सामग्रीः

मखाना –	30 ग्राम	पनीर –	50 ग्राम
तेल –	2 बड़ा चम्मच	घी –	2 बड़ा चम्मच

इलाचची –	2	टमाटर –	4
प्याज –	2	हरी मिर्च –	1
अदरख का पेस्ट –	आधा चाय चम्मच	हल्दी पावडर –	1/8 चाय चम्मच
मिर्च पावडर –	1/2 चाय चम्मच	धनिया पावडर –	1 चाय चम्मच
गरम मसाला –	1/2 चाय चम्मच	चीनी –	1/2 चाय चम्मच
काजू –	6	ताजा मक्खन –	6 चम्मच
कसूरी मेथी –	1/2 चाय चम्मच	दूध –	1/4 कप
धनिया पत्ती कटी हुई –	सजाने के लिए	नींबू का रस –	एक चाय चम्मच

विधिः– एक चाय चम्मच घी गर्म करके उसमें मखाना भून लें। थोड़ा पानी उबालकर उसमें कटा पनीर डालकर रख दें। प्याज, हरी मिर्च तथा टमाटर काट लें। कड़ाही में एक चाय चम्मच तेल तथाएक चाय चम्मच घी डालकर गर्म करें और इलाइची डालें। प्याज और अदरक का पेस्ट डालकर भूनें, फिर हरी मिर्च डालें तथा टमाटर डालकर पकाएँ। नमक डाल दें। मिर्च, धनिया एवं गरम मसाला पावडर डालकर धीमी आँच पर पकाएँ। गैस बंद कर दें और काजू मिलाकर मिश्रण का पेस्ट बना लें। कड़ाही में तेल गर्म करके जीरा तड़कने दें। इस पेस्ट को तबतक भूने, जब तक मिश्रण तेल न छोड़ने लके। एक कप पानी डालकर 3–4 मिनट पकाएँ। अंत में भूना मखाना और पनीर मिला दें। दूध और चीनी भी मिला दें। इस मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर आंच बंद करने के बाद कसूरी मेथी और मक्खन मिलायें। धनिया पत्ती से सजाकर परोसें।

मखाना खीर

सामग्रीः

मिल्क मेड –	200 ग्रा0	मखाना –	30 ग्राम
घिसा नारियल –	30 ग्राम	घी –	1/2 चाय चम्मच
इलाइची पावडर –	1/2 चाय चम्मच	बादाम –	5
किशमिश –	8–10	दूध –	750 मि0ली0

विधिः मखाना को घी में भूनकर मोटा पीस लें। एक बरतन में दूध में मिलाकर 5–10 मिनट धीमी आँच में पकाएँ। नारियल मिलाकर 3–4 मिनट और पकाएँ। अब मिल्कमेड मिला दें तथा 5 मिनट पकायें। इलाइची पावडर बुरक दें। आँच से हटाकर कटे बादाम एवं किशमिश से सजाएँ।

मखाना चिक्की (पाग)

सामग्री :

मखाना –	100 ग्रा0	घी –	200 ग्रा0
चीनी –	500 ग्रा0	दूध –	एक बड़ा चम्मच

विधिः मखाने को चार टुकड़े में काट लें। घी गर्म करके थोड़े–थोड़े मखाना डालकर हल्का गुलाबी होने तक तल दें। थाली में घी लगाकर चिकना कर लें। चाशनी के लिए एक बरतन में चीनी और चीनी का एक तिहाई पानी डालकर गर्म करें। चीनी घुलने पर दूध डाल दें तथा चाशनी के ऊपर भूरे रंग के झाग को अलग कर लें। तीन तार की चाशनी तैयार करें। चाशनी में तले हुए मखाने मिलायें तथा इस मिश्रण को घी लगी थाली में मिलाकर फैलायें। आधे घंटे में चिक्की जमकर तैयार हो जाती है।

मखाना का चारा में उपयोग

अभी की परिस्थिति में मखाना के उपोत्पाद को 70–80 प्रतिशत जलावन के उपयोग में लाया जाता है। बाकी का 20–30 प्रतिशत कचरे में फेंक दिया जाता है। कच्चा मखाना का औसत वजन 0.46 से 0.94 ग्राम एवं धूप में सुखाये हुए मखाना का वजन 0.38 से 0.5 ग्राम होती है। मखाना का उपर का छिलका 58.33 से 65.13 प्रतिशत (धूप में सूखे मखाना) होती है एवं मखाना भूसी (ब्रान) पौप्ड मखाना का 4.98 से 5.46 प्रतिशत होती है। इस प्रकार 56000 टन छिलका एवं 1700 टन मखाना भूसी प्रतिवर्ष उत्पादन होती है। मखाना भूसी में 7.1 प्रतिशत प्रोटीन, 94.36 कार्बनिक पदार्थ एवं 1 प्रतिशत से कम फैट की मात्रा होती है, जबकि छिलका में 4.5 प्रतिशत प्रोटीन एवं 4.5 प्रतिशत प्रोटीन एवं 92 प्रतिषत कार्बनिक पदार्थ होती है। इसलिए इसे मुर्गी एवं बकरी के दाने बनाने के उपयोग में लाया जाता है। मखाने की भुस्सी मुर्गी के दाने में 6 प्रतिशत तक मिलाया जा सकता है, जिससे मुर्गी के वृद्धि एवं दाने को मांस में परिवर्तित करने की क्षमता में अंतर नहीं आती है। इससे दाने की लागत में कमी की जा सकती है। दाने में 50 प्रतिशत तक राइसब्रान के स्थान पर इसे मिलाया जा सकता है। इससे दाने की पाचन एवं स्वादिष्टता प्रभावित नहीं होती है।

एक खिलाड़ी के जीवन में, दबाव हमेशा बना रहता है; आपको इससे निपटना सीखना होता है।

– मैरी कॉम

पोषण वाटिका

रेणु कुमारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, हलसी, लखीसराय, बिहार

स्वास्थ्य मानव जीवन का आधार हैं। स्वस्थ्य शरीर हेतू उत्तम पोषण की आवश्यकता सर्वोपरि हैं। उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रतिदिन भोजन में 125 ग्राम पत्तेदार सब्जी, 100 ग्राम जड़ वाली सब्जी तथा 75 ग्राम अन्य सब्जियाँ होनी चाहिए। सब्जियाँ पोषक तत्वों से भरपूर होती है। दूनिया भर में दो अरब लोग सुक्ष्म तत्वों (विटामीन ए, बी$_1$, बी$_2$, सी, आयरन व जिंक इत्यादि) की कमी से होने वाले रोगों से पीड़ित हैं। इनमें से एक तिहाई भारत में रहते हैं। सूक्ष्म पौष्टिक तत्व की कमी को नियंत्रित करने का सबसे उत्तम उपाय है – पोषण वाटिका लगाना।

पोषण वाटिका/उन्नत गृह वाटिका का तात्पर्य फल एवं सब्जी उगाने की उस व्यवस्था से है। जिसमें परिवार के सदस्यों द्वारा अपने पोषण के लिए खाली पड़े जमीन पर फल एवं सब्जियाँ उगाई जाती है, ताकि वर्ष भर हर तरह की सब्जियाँ आवश्यकतानुसार मिलती रहती है।

स्थान का चयनः पोषण वाटिका का रेखांकन/चयन स्थान के आकार–प्रकार, परिवार के सदस्यों का पसंद, मिट्टी, जलवायु, सिंचाई के साधन के उपलब्धता पर निर्भर करता है। पोषण वाटिका के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए, जहाँ पानी पर्याप्त मात्रा में मिल सके, जैसे – नलकूप या कुएँ का पानी, रसोईघर में इस्तेमाल किया गया पानी पोषण वाटिका तक पहूँच सके। स्थान खुला हो ताकि उस क्षेत्र में सूरज की रोशनी आसानी से पहूँच सके।

पोषण वाटिका की योजना परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर निर्भर करती है । पॉच सदस्यों के एक परिवार के लिए चौथाई एकड़ जमीन पर पोषण वाटिका स्थापित कर ली जाय तो ऐसे परिवार के लिए वर्ष भर सब्जियों की उपलब्धता बनी रहती है । पोषण वाटिका में पीछे की तरफ छोटे फलवृक्ष जैसे केला, पपीता, सहजन, नींबू, करौंदा, आदि के पौधे लगाना अच्छा रहता है, इसके अतिरिक्त पोषण वाटिका में उपलब्ध स्थान का उपयोग निम्न प्रकार से किया जा सकता है ।

1. पोषण वाटिका में बाढ़ के सहारे एक मचान बनाकर बहुवर्षीय सब्जियॉ उगाई जा सकती है जैसे – परवल, कुन्दरू इत्यादि इन सब्जियों को हर वर्ष लगाने की आवश्यकता नहीं होती है ।
2. छाया वाले स्थान में अदरख या हल्दी उगायी जा सकती है । चूँकि इन फसलों को छाया से क्षति नहीं होती है ।
3. पोषण वाटिका में क्यारियों की मेढ़ों पर मूली, गाजर, सौंफ, चुकन्दर आदि को उगाया जा सकता है ।

पोषण वाटिका लगाने के लिए कुछ जरूरी निर्देशः

1. जहाँ तक संभव हो सके पोषण वाटिका घर के पास ही लगावें ताकि वाटिका की देखभाल आसानी से हो सके। अगर भूमि उपयुक्त नहीं हो तो उसमें सड़े–गले पत्ते या सड़ी हुई गोबर की खाद डालकर उसे ठीक कर सकते है।
2. बीज या पौधे किसी विश्वसनीय संस्थान या भरोसे वाली जगह से ही खरीदें।
3. साबुन वाले पानी का छोड़कर किसी भी तरह का बेकार पानी वाटिका में इस्तेमाल कर सकते हैं।
4. कम स्थान उपलब्ध रहने पर केवल हरी सब्जियाँ ही लगावें।
5. पोषण वाटिका को जानवरों से बचाने एवं आकर्षक बनाने हेतु वाड़ (हेज) उपयोग करना चाहिए।

पीषण वाटिका के लिए सामान्य कृषि उपकरण एवं खाद

पोषण वाटिका तैयार करने के लिए एवं पौधों की निकाई–गुड़ाई करने के लिए कुछ छोटे–बड़े कृषि उपकरणों को रखना आवश्यक होता है। इनमें खुरपी, हॅसिया, हैंड हो, फावड़ा, कुदाल, हजारा, दवा छिड़कने या बुरकने का यंत्र, चाकू, कैंची आदि आते है।

पोषण वाटिका में सब्जियों को उगाने के लिए कार्बनिक खादों का व्यवहार करना अच्छा माना जाता है। यदि पोषण वाटिका में एक किनारे पीछे की ओर कम्पोस्ट खाद का गड्ढा तैयार कर लिया जाय और उसमें घर से निकलने वाले कचड़े एवं सब्जियों के छीलन तथा अन्य जैव विघटनशील वस्तुओं को डालकर खाद तैयार की जाय तो अच्छी मात्रा में सब्जी उगाने के लिए खाद मिल सकती है । यदि घर पर पर्याप्त मात्रा में खाद बनाना संभव नहीं हो तो बाहर से कुछ खाद एवं खलियों का प्रयोग किया जा सकता है । खादों एवं खलियों में से वर्मीकम्पोस्ट का व्यवहार अधिक श्रेष्ठकर होता है ।

पोषण वाटिका में सब्जियों को लगाने का समय

गृह वाटिका में सब्जियों को लगाने की ऐसी योजना तैयार करनी चाहिए, जिससे उनकी वर्ष भर उपलब्धता बनी रहे।

सारणीः कुछ प्रमुख सब्जियों को लगाने का समय

क्र0 सं0	सब्जियॉ	लगाने का समय
1.	मिर्च	सितम्बर–मार्च
2.	भिंडी	जुलाई–अगस्त एवं फरवरी–मार्च
3.	बैंगन	फरवरी–मार्च
4.	टमाटर	जुलाई–अगस्त एवं अक्टूबर–नवम्बर
5.	आलू	नवम्बर–दिसम्बर
6.	फूलगोभी	अक्टूबर–नवम्बर

7.	मूली	वर्ष भर
8.	लौकी	फरवरी–मार्च एवं जून–जुलाई
9.	खीरा	फरवरी–मार्च एवं जून–जुलाई
10.	पालक	वर्ष भर

फसल चक्र

1. **गर्मी व बरसात की सब्जियॉ (फरवरी–मार्च एवं जून–जुलाई) :** भिंडी, टमाटर, कद्दू, खीरा, ककड़ी, सेम, करेला, बैंगन ।
2. **सर्दी की सब्जियॉ (सितम्बर–अक्टूबर) :** फूलगोभी, बंदागोभी, आलू, मटर, प्याज, लहसून, गाजर, शलजम, मेंथी, मूली ।

पोषण वाटिका में उगाये जाने वाले कुछ सब्जियों एवं हरी पत्तेदार सब्जियों के प्रभेद इस प्रकार हैं:

धनियाँ : राजेन्द्र स्वाति, पन्त हरीतिमा इत्यादि।

पुदिना : एम०एस०–1, राजेन्द्र क्राँति, शिवालिक, मार्डन कॉल, गोमती इत्यादि।

मिर्च : पूसा ज्वाला, कलयाणपुर चमन, कल्याणपुर–11

मूली : ह्वाइट आइसकिल, रैपिड रेड, पूसा रश्मि इत्यादि।

टमाटर : पूसा रूबी, पूसा गौरव, हिसार अरूण एवं पंजाब केसरी, पूसा सदाबहार, काशी विशेष।

बैगन : पूसा अनमोल, पूसा हाईब्रिड–6 एवं एन०डी०बी०एच०–1, काशी तरू, राजेन्द्र बैगन–2

पालक : ऑलग्रीन, पूसा ज्योति, पूसा हरित एवं जौबनेर ग्रीन इत्यादि।

पोषण वाटिका से लाभ

1. घर के पास बेकार पड़ी जमीन का अच्छा इस्तेमाल हो जाता है ।
2. अपने मन–पसंद के फलें व सब्जियॉ लगाये जा सकते हैं ।
3. ताजे फल व सब्जी प्राप्त होती है ।
4. बाजार में फल और सब्जियों की कीमत अधिक होती है। इसिलिए खरीदा न जाए तो अच्छी खासी बचत होती है।
5. पोषण वाटिका की सब्जियाँ बाजार के मुकाबले अच्छी गुणों वाली होती है।
6. आवश्यकता होने पर फल व सब्जी किसी अवस्था में तोड़े जा सकते हैं ।
7. गृह वाटिका के अन्य लाभ में पत्ती वाली सब्जियों एवं ऐसी दुर्लभ या अल्प प्रचलित सब्जियों की आपूर्ति भी हो जाती है ।

8. प्रायः पत्तीवाली सब्जियों को अधिक देर तक भंडारित नहीं किया जा सकता है और उनको ताजी अवस्था में खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है । इनकी आपूर्ति गृह वाटिका के माध्यम से आसानी पूर्वक की जा सकती है ।
9. जैविक खाद (रसायण रहित) के उपयोग से फल एवं सब्जियों में काफी मात्रा में पोषक तत्व मौजूद रह सकते हैं।
10. पोषण वाटिका से अधिक मात्रा में उत्पादित सब्जी व फल का परिरक्षण कर सकते है ।
11. मनोरंजन तथा व्यायाम का एक उत्तम तरीका है ।
12. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी खुद उगायी गयी सब्जी बाजार की फल सब्जियों से अधिक स्वादिष्ट लगती है।

आँवला का मुरब्बा

आंवला मनुष्य के लिए अमृत फल माना गया है। आंवला एक ऐसा फल है कि इसमें काफी गुण है। एक प्रकार से औषधीय फल में आता हैं आंवला पेट के लिए काफी लाभदायक है, बाल को काला रखता है, सर्दी खांसी होने नहीं देता है। पेट में गैस नहीं होने देता है। आंवला का मौसम सितम्बर से मार्च तक रहता है इसलिए जब इसका मौसम रहता है उस समय आंवला की अधिकता रहती है साथ ही सस्ता रहता है। उसी समय आंवला का विभिन्न व्यंजन तैयार कर जैसे आंवला का मुरब्बा, हलुआ, च्वयनप्राश, जूस इत्यादि बना कर रख सकते हैं इससे ज्यादा से ज्यादा आय प्राप्त कर सकते हैं –

सामग्री –

आँवला – 1 किलोग्राम

चीनी – 1 किलो

चूना – 1 चम्मच

फीटकिरी पावडर – एक चम्मच

हाइड्रो पाउडर – एक चम्मच

बनाने की विधि – आँवला को धोकर अच्छी तरह कांटा से छेद कर लें। रातभर चूना पानी में फूलने दें। सुबह अच्छी तरह धों लें। उबालने के बाद फिर साफ पानी से अच्छी तरह धों लें एवं जालीदार बर्तन में कुद देर पानी गरने छोड़ दें। चीनी पानी को चूल्हा पर चढ़ा दें। जब खौलकर चीनी गल जाय तब उसमें हाइड्रो पाउडर दें और उसमें आंवला डाल दें। आंवला जब चीनी पानी में सीझ जाए तब चूल्हा पर से उतार दें। मुरब्बा रस में डुबा रहेगा। यह मुरब्बा चौड़े मुँह वाले शीशी में रखकर ढक्कन बन्द कर दें। सालभर तक मुरब्बा का सेवन करें खराब नहीं होगा।

आँवला का हलुआ

सामग्री –

आँवला	– 1 किलोग्राम
गुड़	– 1 किलो
षुद्ध घी	– 300 ग्राम
काजु	– 100 ग्राम
छुहाड़ा	– 100 ग्राम
गरम मसाला	– 20 ग्राम

बनाने की विधि – आँवला को धोकर किसी बर्तन में पानी डालकर चूल्हा पर चढ़ा दें। जब आंवला सीझ जाय तो चूल्हा पर से उतार कर आंवला का बीज निकालकर चोखा जैसा बना लें। कढ़ाई में घी डालकर चूल्हा पर चढ़ा दें जब घी गरम हो जाय तब उसमें आँवला का चोखा भून लें। उसके बाद उसमें गुड़ डालकर तब तक भूने जब तक हलुआ में घी नहीं छोड़ने लगे। अब उसमें काजु, किसमिस, छुहाड़ा, गरम मशाला सभी को पीस कर मिलाकर चूल्हा पर से उतार दें। अब जब ठंडा हो जाय तब चौड़े मुँह वाले शीशी में रख दें। साल भर तक सुरक्षित रहेगा। एक चम्मच मुँह धोने के बाद इसका सेवन करें। सर्दी–खाँसी कभी नहीं होगा, पेट हमेशा ठीक रहेगा, बाल काला रहेगा।

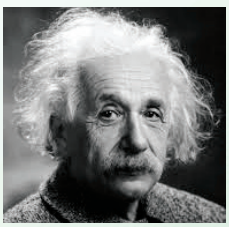

क्रोध मूर्खों की छाती में ही बसता है|

– अल्बर्ट आइंस्टीन

धान के समेकित रोग-व्याधि प्रबंधन

उदय प्रकाश नारायण

कृषि विज्ञान केन्द्र, हलसी, लखीसराय, बिहार

धान बिहार राज्य की प्रमुख फसल है, इसकी खेती लगभग 54 लाख हेक्टेयर में की जाती है। धान की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए पौधा संरक्षण बहुत जरूरी है। फसल का हानि लगभग 13 प्रतिशत केवल रोगों से होता है। धान के प्रमुख हानिकारक रोगों का पहचान कर उनका समेकित रोग प्रबंधन अपनाया जा सकता है:–

1. धान का झोका रोग : यह बीज जनित एवं हवा द्वारा प्रसारित फफूंद रोग है, जो कि फसल के सभी अवस्था में लगता है। यह रोग में पत्तियों पर धूसर या उजला केन्द्र के चारों ओर भूरा या लाल किनारा वाला छोटा–छोटा दिखाई देता है। इन धब्बों का आकार बढ़ने पर नाव या आंख के आकार का भींगा हुआ धूसर या नीले गोल बिन्दु जैसा दिखाई देता है। अत्यधिक आक्रमण की अवस्था में नाव आकार के धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को झुलसा अवस्था में पहुंचा देता है। गर्दन एवं गांठ पर इस रोग के लक्षण गहरा, सड़ा हुआ धब्बा के रूप में दिखाई पड़ता है, जो हवा के हल्के झोंकों से टुट कर गिर जाता है। रोग का आक्रमण बाली के नीचे ग्रीवा पर होने से प्रभावित बाली में दाना नहीं पड़ता है।

प्रबंधन:

i. कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू० पी० से 2 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचार कर नर्सरी की बुआई करें।

ii. खेत को चारपतवार से मुक्त रखें।

iii. प्रोपीकोनाजोल 25 ई०सी० का 1 मीली लीटर या कसुगामाइसीन 3 प्रतिशत एस०एल० या ट्रायसाइक्लाजोल 75 डब्ल्यू० पी० का 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

iv. रोग के लक्षण दिखाई देने पर स्यूडोमोनास फ्लोरीसंस + ट्राइकोडर्मा की 5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 10 दिन बाद करें।

2. आवरण झुलसा (शीथ ब्लाइट) : इस रोग को ग्रामीण गलसा या गलकी कहते हैं, यह मृदा जनित फफूंद रोग है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम धुसर हरे–भूरे रंग के अनियमित आकार के धब्बे पानी की सतह के ठीक उपर पत्रावरण पर दिखाई पड़ता है, जो देखने में सर्प के केचुल जैसे लगते हैं। आवरण झुलसा, बाली निकलने के बाद भी जारी रहता है। वातावरण में अधिक नमी एवं जल जमाव के कारण रोग की उग्रता बढ़ जाता है।

प्रबंधन:

i. रोग रोधी किस्म का चुनाव करें।

ii. खेत में जल निकास का प्रबंधन करें।

iii. बीज का उपचार ट्राइकोडर्मा 5 ग्रा० प्रति किलोग्राम बीज अथवा कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू० पी० 1 ग्राम प्रति किलाग्राम बीज से करने के बाद नर्सरी तैयार करें।

iv. कार्बेन्डाजीम 2 ग्राम प्रति लीटर घोल में बिचड़ा के जड़ को आधा घंटा तक उपचार कर रोपाई करें।

v. फसल में रोग के लक्षण दिखाई पड़ने पर वलीडामाइसीन 35 एल० 2 मीली लीटर अथवा हेक्साकोनाजॉल 5 ई०सी० 2 मीली लीटर/लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। दुवारा छिड़काव बाली निकलने के पूर्व करनी चाहिए।

3. भूरा पर्ण चित्ती रोग (भूरा धब्बा): यह बीमारी फफूंद जनित रोग है। यह रोग पौधे के सभी अवस्था में लगता है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर भूरे रंग के छोटा–छोटा गोलाकार धब्बा बन जाता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर कई धब्बे आपस में मिलकर पूरी पत्ती पर फैल जाती है। यह धब्बा धान के दानों पर भी दिखाई पड़ता है। अत्यधिक ग्रसित दाने सिकुड़ जाते है तथा अंकुरण क्षमता भी प्रभावित होते हैं। यह बीमारी पानी की कमी से ज्यादा फैलता है।

प्रबंधन:

i. सिंचाई की समुचित व्यवस्था करें।

ii. उर्वरक का संतुलित एवं अनुशंसित मात्रा का व्यवहार करें।

iii. कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू० पी० का 2 ग्राम प्रति किलोग्राम के दर से बीजोपचार करें।

iv. रोग के लक्षण दिखई देते ही मैंकोजेब 75 डब्ल्यू०पी० 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा प्रोपीकोनाजोल 25 ई०सी० 1 मीली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

4. आभासी कंडुआ (फाल्स स्मट): इस रोग को ग्रामीण कोलिया या लेढ़ा कहते हैं। यह रोग फफूंद द्वारा उत्पन्न होता है। यह बीज जनित एवं हवा के द्वारा फैलता है। इस रोग के लक्षण बालियों के निकलने के बाद स्पष्ट होते हैं। इसके लक्षण धान के दाना पर प्रायः गोल बढ़े आकार के पीला – हरा जो बाद में काले रंग के रूप में दिखई पड़ता है। प्रत्येक बाली या बालियों के प्रत्येक दाने रोग से प्रभावित नहीं होते हैं। यह रोग लक्षमिनिया नाम से भी जाना जाता है।

प्रबंधन:

i. उर्वरक का संतुलित व्यवहार करें।

ii. कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू०पी० का 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचार कर बुआई करें।

iii. इस रोग से बचाव हेतु प्रोपीकोनाजोल 25 ई०सी० 1 मी०ली० प्रति लीटर पानी में घोलकर दो

छिड़काव करें। प्रथम छिड़काव गाभा अवस्था में तथा दुसरा छिड़काव दुध से दाना बनने के क्रम में।

5. शीथ राटः यह फफूंद जनित रोग है। पिछात बुआई के पौधों में बाली निकलने से पकने तक यह फफूंद सबसे अंतिम पत्तों के आवरण पर आक्रमण करता है। पत्रावरण पर अनियमित आकार के भूरे–काले धब्बे बनते हैं। बाद में धब्बे आपस में मिलकर पुरा आवरण ढक लेता है, जिसके कारण बालिया आवरण के अंदर ही रह जाती है या अंशतः बाहर निकलता है।

प्रबंधनः

i. बीज की दर से कर ही बुआई करना चाहिए।

ii. रोग रोधी किस्में की बुआई करें।

iii. बिजोपचार स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से करें।

iv. रोपाई के 30 दिन बाद 2.5 किलोग्राम स्यूडोमोनास फ्लोरीसेंस को 50 किलोग्राम कम्पोस्ट के साथ मिलाकर छिंट दें।

v. मैंकोजेब 75 डब्ल्यू० पी० का 2.5 ग्राम या कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू० पी० का 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर गाभा अवस्था में छिड़काव करें।

6. जीवाणु पत्र अंगमारीः यह जीवाणु जनित रोग है। इस रोग के शुरू में पत्तियों के शीर्ष पर पीले या पुआल के रें के लहरदार लक्षण दिखाई पड़ते हैं, जो बाद में पत्ती के एक या दोनों किनारे से लेकर नीचे की ओर बढ़ते हैं तथा पत्तियाँ सुख जाती है। यह रोग पत्तियों से तने में बढ़कर पूरे पौधे या गुच्छे को सुखा देता है। अंतः पौधे नष्ट हो जाते हैं।

प्रबंधनः–

i. रोग रोधी किस्म को लगायें।

ii. खेत में जल का उचित निकास होना चाहिए।

iii. बीजों को स्ट्रेप्टोमाइसीन 1 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक भिंगोकर ही बीज बुआई करें।

iv. उर्वरकों का संतुलित एवं अनुशंसित मात्रा का व्यवहार करें। नेत्रजन उर्वरक का ज्यादा उपयोग से रोग की तीव्रता में वृद्धि होती है।

v. स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 1 ग्राम एवं कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 25 ग्राम को 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें अथवा कसुगामाइसीन 3 प्रतिशत एस०एल० का 1.5 मीलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10–15 दिनों में दुबारा छिड़काव करें।

vi. खैरा रोग : यह रोग सुक्ष्म पोशक तत्व जिंक की कमी के कारण होता है। धान के रोपाई के 10–15 दिन बाद नीचे के पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद में ताम्बे या कत्थई रंग के हो जाते

है। पौधा बौना रह जाता है तथा ब्यात (कल्ले) भी कम निकलते हैं, प्रभावित पौधे के जड़ भी कत्थई रंग का हो जाता है तथा वृद्धि रूक जाती है।

प्रबंधनः

i. रोपाई के समय कदवा में 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टर डालें।

ii. रोपाई के बाद पौधे में इसका लक्षण दिखई पड़े तो 5 किलोग्राम जिंक सल्फेट तथा 2.5 किलो कली चुना को 600–700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

जहाँ जाइये प्यार फैलाइए। जो भी आपके पास आये वह और खुश होकर लौटे।

– मदर टेरेसा

गेंहूँ की उन्नत खेती

डा0 विनोद कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर, बिहार

गेंहूँ रबी मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख फसल है। बिहार में गेंहूँ की खेती लगभग 24 लाख हेक्टेयर में की जाती है और इसकी उत्पादकता लगभग 22 क्विंटल/हे0 है। जबकि देष में इसकी उत्पादकता 27 क्विंटल/हे0 है। इसका मुख्य कारण है धान की कटाई बिलम्ब से होती है क्योंकि धान की रोपनी बिलम्ब के साथ–साथ लम्बी अवधि धान प्रभेद का प्रयोग। ऐसी स्थिति में गेंहूँ की बुआई में बिलम्ब होने से उपज में कमी हो जाती है। यदि उन्नत किस्म के बीज का प्रयोग कर समय से बुआई करने पर उत्पादकता में वृद्धि लायी जा सकती है।

गेंहूँ की बुआई का सही समय नवम्बर के दूसरे सप्ताह से लेकर दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक होता है। इस समय बुआई करने पर गेहूँ को जरुरत के अनुसार वातावरण प्राप्त होता है और अधिकत्तम उपज की संभावना रहती है। अंकुरण के समय तापमान 20–25^{0}C, कल्ला फुटने के समय 16 – 20^{0}C तथा दाना बनने की अवस्था में 20–25^{0}C, औसत तापमान की आवष्यकता होती है। नवम्बर माह में जब मुँह से भाप आने लगे या जानवर के गोबर करने के बाद उसमें से भाप निकलता नजर आये तो समझना चाहिए की गेहूँ की बुआई का उपयुक्त समय आ गया है।

खेत की तैयारी एवं बुआई की विधि –

मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई एवं हैरो/कल्टीवेटर से 2–3 जुताई कर पाटा देकर समतल बनाकर खेत को तैयार करते है। अगर संभव हो तो रोटावेटर से खेत एक ही बार में तैयार हो जाता है तथा खेत में पाये जाने वाले खरपतवार एवं खुट्टी खेत में ही मिल जाते हैं। जिससे खेत की उर्वराषक्ति भी बढ़ जाती है।

पहले मान्यता थी की गेंहूँ की बुआई के लिए खेत की अच्छी तैयारी होनी चाहिए। परन्तु समय के साथ–साथ मान्यताओं में बदलाव आया है। उत्पादन एवं लागत में भी संतुलन आवष्यक हो गया है।

जीरो टिलेज विधि – ऐसे खेत जिसमें धान कटने के बाद खेत गीला रहता हो तो वैसे खेत में समय पर बुआई करने के लिए जीरो टिलेज सीड–सह– फर्टिलाइजर ड्रील का प्रयोग अच्छा होता है क्योंकि इस यंत्र की सहायता से खेत में बिना जुताई किये एक ही बार में खाद के साथ – साथ गेंहूँ की बीज की बुआई हो जाती है तथा समय के बचत के साथ साथ खेत की तैयारी में लागत खर्च भी कम आती है। इस मषीन में साधारण सीड ड्रील के कुँड खोलने वाले चौड़े षावेल के जगह पर पतली मिट्टी चीरने वाले षावेल (फली) लगा होता है जिससे आसानी से नमी वाले खेतों में बिना जुताई किये पतली लाइन चीरते हैं ओर उसमें बीज तथा खाद उचित गहराई में गिर जाते हैं।

इस विधि से खेती करने से उत्पादन खर्च 2500 – 3000 रुपये प्रति हेक्टेयर (तैयारी खर्च एवं डीजल) के बचत के साथ 10–15 दिन पहले बुआई हो जाती है। इसमें खरपतवार की समस्या खासकर गेंहूँ की मामा (गुली डण्डा) का प्रकोप कम होता है और सिंचाई में पानी की भी बचत होती है।

प्रभेद का चुनाव – हमारे राज्य में गेंहूँ की खेती दो परिस्थिति सिंचित एवं असिंचित अवस्था में की जाती है।

परिस्थिति	प्रभेद	बुआई का समय	औसत उत्पादन
सिंचित अवस्था क. समय से	के. 307, एच.डी. 2824, एच. डी. 2733, पी.बी.डब्लू. 343, एच.यू.डब्लू. 468, पी. बी. डब्लू 502, एन.डब्लू. 1067, एच.पी. 1761	15 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक	50 – 55 क्विं0/हे0
ख. विलम्ब से	पी.बी.डब्लू. 373, डी.बी.डब्लू. 14, एच.डी. 2643, एन.डब्लू. 1014, एच.यू.डब्लू. 234, एच. पी. 1744, एच. डी. 2285, यू.पी. 2425	10 दिसम्बर से 10 जनवरी	35–40 क्विं./हे0
असिंचित अवस्था	सी. 306, आर. डब्लू 3016, एच. डी. 2781, के. 8027, एच.डी.आर 72	प्रथम सप्ताह नवम्बर से तीसरा सप्ताह नवम्बर	25 – 30 क्विं0/हे0

बीजोप्चार एवं बीज की मात्रा – बुआई के पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता की जाँच अवष्य करें। साथ ही साथ बीज जनित एवं मिट्टी जनित रोगाणुओं से बचाव के लिए बीजोप्चार करना अति आवश्यक है। गेंहूँ में बीजोप्चार निम्नांकित में किसी एक विधि से किया जा सकता है।

1. **जैविक विधि –** ट्राइकोडर्मा विरिडि पाउडर 5 ग्राम प्रति किलो बीज से बीजोप्चार करें।
2. **रासायनिक विधि –** कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्लू. पी. (वेभिस्टीन) से 2 ग्राम प्रति किलो बीज से बुआई के पहले बीजोप्चार करें। समय से बुआई के 125 किलो/हे0 की दर से कतार से कतार की दूरी 20 से.मी. रखकर 5–6 से.मी. की गहराई पर बुआई करनी चाहिए। विलम्ब से बुआई की अवस्था में 150 किलो/हे0 की दर से कतार से कतार की दूरी 18 से.मी. रखकर 5 – 6 से.मी. की गहराई में बुआई करनी चाहिए।

मिट्टी उपचार – अगर खेत में दीमक की समस्या या कटुआ कीट लगता हो तो अन्तिम जुताई के समय में मिट्टी में क्लोरोपाइरीफॉस धूल या फेनवाल धूल 0.2 प्रतिशत का 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिला दें।

उर्वरक का प्रबंधन – खेत में उर्वरक का प्रयोग मिट्टी जाँच के आधार पर अनुशंसित मात्रा के अनुसार

करनी चाहिए। सघन खेती के कारण मुख्य तत्वों के अलावा अन्य सूक्षम तत्वों की कमी हो रही है। अतः गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट 100–150 क्विं./हे0 की दर से व्यवहार करें एवं साथ ही साथ संतुलित खाद का प्रयोग कर अच्छी पैदावार ली जा सकती है। धान–गेंहूँ फसल चक्र के अंतर्गत गेंहूँ की खेती की जा रही हो तो अगर जिंक सल्फेट का व्यवहार धान में नहीं किया गया हो तो 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के समय व्यवहार करें।

अवस्था	अंतिम जुताई से पहले		प्रथम सिंचाई के समय यूरिया का प्रयोग	द्वितीय सिंचाई के समय यूरिया का प्रयोग
	एन.पी. के.(12:32:16)	यूरिया		
समय से बुआई	160 कि.ग्रा	75 कि.ग्रा.	50 कि.ग्रा.	50 कि. ग्रा.
विलम्ब से बुआई	125 कि.ग्रा	40 कि.ग्रा.	50 कि.ग्रा.	50 कि. ग्रा.

खरपतवार नियंत्रण – गेंहूँ की फसल में खर–पतवार के कारण उपज में 30 से 40 प्रतिशत उपज में कमी हो जाती है। अतः समय से खर–पतवार का नियंत्रण अति आवश्यक है। गेंहूँ में मुख्यतः सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे – गुल्ली डंडा, जंगली जई इत्यादि के अलावा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे – कृष्ण नील, बथुआ, अंक्टी, हिरणखुरी, सैंजी आदि पाये जाते हैं।

यांत्रिक विधि – (हैण्ड–हो) द्वारा निराई का फसल उत्पादन पर अच्छा प्रभव देखा गया हैं इसके अलावे खरपतवारनाषी का छिड़काव करने से समय पर खरपतवार का नियंत्रण हो जाता है।

क0सं0	खरपतवारनाशी रसायन	मात्रा एवं प्रयोग विधि	खरपतवार नियंत्रण
1.	पेन्डीमेथलिन 30 ई0सी0	3.3 लीटर दवा प्रति हेक्टर की दर से 600 – 700 लीटर पानी में घोल बना के बुआई के 2–3 दिन के अन्दर छिड़काव करें।	मुख्यतः घास कुल वाले खरपतवार जैसे – गुल्ली डण्डा, जंगली जई आदि
2.	सल्फोसल्फयूरॉन (लीडर) 75 प्रतिशत डब्लू.जी.	35 ग्राम/हे0 की दर से 600–700 लीटर पानी में घोल बना के बुआई के 25–30 दिन बाद छिड़काव करें	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार एवं सकरी पत्ती वाले खरपतवार में वन गेंहूँ (गुल्ली डण्डा) की समस्या के लिए खास दवा।
3.	आइसोप्रोट्यूरॉन 75 प्रतिशत या 50 प्रतिशत डब्लू.पी.	1 किलो (50 प्रतिशत) या 750 ग्राम (75 प्रतिशत) डब्लू पी. की सक्रिय तत्व 600 – 700 लीटर पानी में घोल बनाके बुआई के 25 – 30 दिन बाद छिड़काव करें	स्करी पत्ती वाले खरपतवार पर विशेष प्रभावकारी

4.	2–4 डी0 सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत डब्लू. पी.	1 किलो दवा 600–700 लीटर पानी में मिला के 600–700 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के 25–30 दिन बाद छिड़काव करें।	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे – बथुआ, कृष्णा नील, हिरण खुरी इत्यादि

सिंचाई की मात्रा – आमतौर पर बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में 3–4 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती हैं सिंचाई जल की आवश्यकता मिट्टी के प्रकार, फसल की स्थिति एवं वर्षा पर निर्भर करती है। आवश्यकतानुसार सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर विभिन्न अवस्थाओं में किसानों के लिए सिंचाई निम्न सारणी के अनुसार करना लाभप्रद है –

सिंचाई जल की उपलब्धता	सिंचाई की अवस्था
एक सिंचाई	शीर्ष जड़ें निकलने के समय
दो सिंचाई	शीर्ष जड़ें निकलने के समय एवं दानों में दूध भरने के समय
तीन सिंचाई	शीर्ष जड़ें निकलने के समय, कल्ले निकलने के समय एवं दानों में दूध भरने के समय
चार सिंचाई	शीर्ष जड़ें निकलने के समय, कल्ला निकलने की अंतिम अवस्था में, गाभा के समय एवं दानों में दूध भरने के समय

कीट एवं व्याधि प्रबंधन – गेंहूँ की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट एवं रोग व्याधि का समय पर नियंत्रण अवश्य करें इसमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं –

1. **तना छेदक कीट –** इस कीट के द्वारा आर्थिक क्षति स्तर पार होने की अवस्था में इण्डोसल्फान 35 ई0सी0 1 लीटर/हे0 की दर से छिड़काव करें।
2. **दीमक –** इससे नियंत्रण के लिए क्लोरीपाइरीफॉस 20 ई0सी0 1 लीटर दवा/हे0 घोल बनाकर मिट्टी में छिड़काव करें।
3. **झुलसा रोग –** इस रोग से बचाव के लिए रोग रोधी किस्मों का चुनाव एवं बीजोप्चार करना चाहिए।
4. **कलिका रोग –** इस रोग से बचाव के लिए अन्तः प्रवाही रसायन से बीजोप्चार करना चाहिए। बीजोप्चार के लिए 2 ग्राम कार्बन्डाजीम 50 प्रतिशत डब्लू0पी0/किलो बीज की दर से व्यवहार करना चाहिए।
5. **अँकड़ी रोग –** वाली निकलने पर सूत्रकृमि पुष्प भाग में प्रवेश कर प्रजनन करते हैं तथा दाने को अँकड़ी के रुप में परिवर्तित करते हैं। 10 प्रतिशत नमक का घोल में बीज को डुबाने से ग्रसित दाने घोल की सतर पर आ जाते हैं जिसे छानकर जला दिया जाता है तथा डुबे हुए दाने को 2–3 पानी से धोकर प्रयोग करें।

कटनी, दौनी एवं भण्डारण

फसल परिपक्व हो जाने पर ही कटनी करनी चाहिए। कटनी के बाद थ्रेसर से दौनी करें तथा दाने को अच्छी तरह सुखने के बाद भण्डारण करें। भण्डारण के समय दानों में नमी 10–12 प्रतिशत से अधिक नहीं रखें। चुहों के नियंत्रण के लिए जिंक या एल्यूमिनियम फास्फेट की गोली को चूहों के बिलों में डालकर अच्छी तरह से बन्द कर दें।

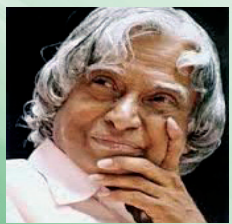

अगर आप सूर्य की तरह चमकना चाहते हो, तो पहले सूर्य की तरह जलना सीखो।

– डॉ ए पी जे अब्दुल कलाम

शकरकन्द की वैज्ञानिक खेती

सुधीर चन्द्र चौधरी

कृषि विज्ञान केन्द्र, हलसी, लखीसराय, बिहार

उत्तरी बिहार में शकरकन्द को क्षेत्रीय भाषा में ''आलुआ'' एवं पश्चिमी बंगाल में ''मीठा आलू'' कहते हैं। इसके कन्द को उबालकर या पकाकर दूध, दही या दाल के साथ मुख्य आहार के रूप में खाया जा सकता है जिसे 1960 के दशक में उत्तरी बिहार में मुख्य खाद्य फसल के रूप में उगाया जाता थां इसके कोमल पत्ती को पकाकर साग के रूप में भी खाते थे लेकिन आजकल इससे बढ़िया मुख्य खाद्यान जैसे गेहूँ, चावल एवं मक्का के उपलब्ध होने पर लोग शकरकन्द खाना पसंद नहीं करते हैं क्योंकि इसके लगातार सेवन से आहार नाल में गैस बनता है। शकरकन्द के कन्दों को कूटकर सुखाने के पश्चात् चक्की में पिसाकर आटा तैयार किया जा सकता है जिसे गेहूँ के आटा में मिलाकर रोटी भी बनाया जा सकता है। इसकी लत्ती एवं पत्ती में प्रोटीन की मात्रा काफी अत्यधिक होती है जिस कारण इसे गुणवत्तायुक्त हरे हारा के रूप में दुधारू पशुओं को खिलाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

भारत में इसकी खेती मुख्यतः उड़ीसा, बिहार एवं उत्तर प्रदेश में होती है। देश के अन्य राज्य जैसे झारखंड, मध्यप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, तमिलनाडु एवं असम में भी इसकी खेती होती है। इसके अलावा अन्य राज्यों के कुछ हिस्सों में इसकी खेती होती है। बिहार में मुख्यतः मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, दरभंगा, छपरा, मुंगेर, भागलपुर, गया, पूर्णिया आदि जिलों में इसकी खेती होती है। उत्तरी बिहार के उपरी जमीन में इसकी रब्बी फसल के रूप में सितंबर–अक्टूबर में शरदकालीन रोप की जाती है। जबकि निचली जमीन में फरवरी के पूर्वार्द्ध में बसन्तकालीन रोप की जाती है।

जलवायुः इसकी खेती ऊष्ण कटिबंधीय एवं निम्न उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में जहाँ गर्म नमीयुक्त जलवायु एवं गर्म सूर्यप्रकाश युक्त दिन एवं ठण्ढी रात हो तो करने पर कन्द का विकास बढ़िया होता है। कन्द का विकास छोटे दिन जिसमें प्रकाश की तीव्रता कम होती है अच्छी होती है जबकि बड़ा दिन में लत्ती का विकास अच्छा होता है एवं कन्द का विकास कम होता है।

तापमानः इसका विकास 25^0C से ऊपर तापमान पर अच्छा होता है। 25 से 30^0C तापमान कन्द का विकास के लिए उपयुक्त होता है जबकि 20^0C से कम तापमान उपयुक्त नहीं होता है।

वर्षाः फसल अवधि में 750 mm वर्षा पर्याप्त होता है। रोपनी के एक सप्ताह बाद वर्षा या सिंचाई से पर्याप्त पानी की जरूरत होती है।

मिट्टीः इसकी खेती के लिए बलुई–दोमट मिट्टी सबसे अच्छी होती है जबकि चिकनी मिट्टी में कन्द का विकास कमजोर होता है। उपजाऊ एवं अच्छी जल निकासी युक्त मिट्टियाँ शकरकन्द की खेती के लिए उपयुक्त होता है। शकरकन्द जल का जमाव बर्दास्त नहीं करता है। हल्की अम्लीय मिट्टी (pH 5.5 – 6.5)

इस फसल के लिए उपयुक्त होता हैं यह लवणीय या क्षारीय मिट्टियों के प्रति संवेदनशील होता है, इसलिए इसप्रकार की मिट्टिओं में खेती से परहेज करें।

अत्यधिक उपज वाले प्रभेद का गुण: वैसे प्रभेद जिसमें प्रति पौधा कन्दों की संख्या एवं पत्ती के डंठल की लंबाई अधिक हो तथा जिसके पत्तियों का क्षेत्रफल कम हो तो वह अत्यधिक उपज देता है।

शकरकन्द में कन्द बनने की शुरूआत से कन्द के विकास को **"कन्दीकरण"** कहते हैं। शकरकन्द में कन्दीकरण प्रक्रिया को निम्न कारक प्रभावित करते हैं:

i. **प्रभेद का प्रभाव:** प्रकाश के प्रति असंवेदनशील प्रभेद से सालों भर लगातार ऊपज प्राप्त की जा सकती है जैसे सम्राट (S-30) एवं OP-I ।

ii. **मौसम का प्रभाव:** शकरकन्द के अधिकांश प्रभेद मौसम से बंधे होते हैं जिसकी खेती खास मौसम में होता है जिसमें कन्द का विकमास विशेष मौसम में ही होता है।

iii. **प्रकाश का प्रभाव:** कन्द का सामान्य वृद्धि एवं विकास प्रकाश की अनुपस्थिति में होता है।

iv. **प्रकाश समय का प्रभाव:** कन्द का विकास छोटा दिन में होता है।

v. **तापमान का प्रभाव:** रात का निम्न ताप कन्द बनने एवं विकास में मददगार होता है। 25^0C-30^0C तापमान कन्द विकास के लिए उपयुक्त होता है जबकि 20^0C से कम तामान कन्द विकास को अवरूद्ध करता है।

vi. **मिट्टी में ऑक्सीजन की मात्रा:** मिट्टी में अपर्याप्त ऑक्सीजन की उपस्थिति से कन्द का विकास धीमा होता है जैसा कि पानी जमाव वाले मिट्टी में शकरकन्द के कन्द का विकास कम होता है।

vii. **पत्ती क्षेत्रफल का प्रभाव:** घना एवं बड़ा पत्ता या उच्च लीफ एरिया इन्डेक्स वाले प्रभेद में कन्द का बनना कम होता है।

viii. **नाइट्रोजन का प्रभाव:** अत्यधिक नाइट्रोजन युक्त उर्वरक का व्यवहार करने पर विलम्ब से कन्द बनता है, इसलिए संतुलित छच्ज्ञ का व्यवहार करें।

ix. **खनिज लवण का प्रभाव:** बोरिक एसिड 10 PPM एवं मैग्नेशियम सल्फेट 1000 PPM का प्रयोग करने पर कन्द बनने की प्रक्रिया उत्प्रेरित (तेज) होती है।

x. **प्रभेद का चयन:** शकरकन्द लगाने के समय एवं मौसम के अनुरूप प्रभेद का चयन करना चाहिए।

शरदकालीन रोप (सितम्बर–अक्टूबर) के लिए अनुशंसित प्रभेद:

राजेन्द्र शकरकन्द–5, राजेन्द्र शकरकन्द–35, राजेन्द्र शकरकन्द–43, राजेन्द्र शकरकन्द–47, राजेन्द्र शकरकन्द–92, क्रॉस–4, कालमेघ, सम्राट (S-30),76–OP–219 (श्री बर्द्धिनी), OP-1 आदि।

बसंतकालीन रोप (फरवरी पूर्वार्द्ध) के लिए अनुशंसित प्रभेदः

क्रॉस–4, राजेन्द्र शकरकन्द–35, सम्राट (S-30) हाईस्टार्च (सर्वदीपुर लोकल)

खरीफ कालीन रोप (जून–जुलाई) के लिए उपयुक्त प्रभेदः सम्राट (S-30), 76-OP-217 (श्री नंदिनी)।

कुछ प्रमुख प्रभेदों की विशेषताएँः

सम्राट (S-30) : खरीफ एवं गरमा फसल के लिए उपयुक्त, प्रकाश असहिष्णु, पौधा वृद्धि बहुत अच्छा, उर्वरक सहिष्णु, कम समय में सुडौल कन्द बनने की क्षमता, मध्यम प्रकार के सुखाड़ सहिष्णु, 90 दिनों के बाद उखाड़ने के लिए उपयुक्त, उपज क्षमता 25–30 t/ha।

76-OP-217 (श्री नन्दिनी): परिपक्वता 100 दिन, खरीफ के लिए विशेष उपयुक्त।

76-OP-219 (श्री बर्द्धिनी): परिपक्वता 105 दिन, उपज 20–25 t/ha।

रबी फसल में धान कटनी के बादः

OP-I प्रकाश असहिष्णु जो किसी भी माह में लगाने पर कन्द बनाता है।

चयनित प्रभेदों का पौधशाला में लत्ती उत्पादन की विधिः

पौधशाला में तैयार लत्ती को ही मुख्य फसल उत्पादन में व्यवहार करना चाहिए क्योंकि ताजा तैयार हुए शकरकन्द के फसल वाली लत्ती को रोप में इस्तेमाल करने पर संतोषप्रद उपज नहीं देता है।

पौधशाला (नर्सरी) में लत्ती उगाने के लिए आवश्यक क्षेत्रफल जो मुख्य खेत का 1/10 वाँ हिस्सा होता है। यानि 1 हेक्टर भूमि में शकरकन्द लगाने के लिए 100 वर्गमीटर नर्सरी की आवश्यकता होगी। जिसमें लत्ती का उत्पादन करना होगा।

नर्सरी ऐसे जगह स्थापित करना चाहिए जहाँ सुखाड़ में भी उचित सिंचाई प्रबन्ध हो इसके लिए तैयार फसल से मध्यम आकार के कन्द या लत्ती के ऊपरी हिस्से के कटाई से नर्सरी लगाना चाहिए।

1. **कन्द से लत्ती का उत्पादनः** इसमें स्वस्थ्य एवं छोटे आकार (50 ग्राम प्रति कन्द) के कन्द को 25 सेमी० की दूरी पर 3 सेमी० गड्ढा करके नमीयुक्त नर्सरी बेड में लगाना चाहिए जिसके लिए 80 किलो शकरकन्द के कन्द की आवश्यकता होगी जिसे 100 वर्ग मीटर क्षेत्र में लगाया जा सकता है। कन्द लगाने के बाद उसे मिट्टियों द्वारा हल्का ढक देना चाहिए। दो सप्ताह में मिट्टी के सतह से बाहर कोपलें निकल जाते हैं समयानुसार नर्सरी की सिंचाई करते रहना चाहिए। 45–60 दिनों में लत्ती को काटकर मुख्य खेत में लगाया जा सकता है। इसे प्राथमिक नर्सरी कहते हैं।
2. **द्वितीयक नर्सरी का उत्पादनः** इसमें प्राथमिक नर्सरी से लत्ती काटकर लगाते हैं एवं इससे प्राप्त लत्ती को काटकर मुख्य खेत में लगाया जाता है।

अनुसंधान से पाया गया है कि प्राथमिक नर्सरी से प्राप्त लत्ती के उपरी हिस्से को काटकर मुख्य खेत में लगाकर सर्वोत्तम उपज की प्राप्ति की जा सकती है। सर्वोत्तम उपयोग हेतु लत्ती के ऊपरी से मध्य हिस्से को ही इस्तेमाल करें लत्ती कटिंग की लम्बाई 20–25 सेमी० हो तथा बगैर पत्ती को हटाये ही कटिंग को रोपनी करनी चाहिए। कटिंग को रोपने के पहले एक–दो दिन तक ठण्डा में भण्डारण कर लगाने पर बढ़िया ढंग से लगता है एवं कन्द के उपज में बढ़ोत्तरी होती है।

3. **खेत की तैयारी:** जमीन की जुताई 20 सेमी० गहराई तक ट्रैक्टर या देशी हल–बैल से अच्छी तरह करनी चाहिए। जुताई के पूर्व खेत में 150 क्विंटल/हे० कम्पोस्ट या 50 क्विंटल/हे० वर्मी कम्पोस्ट एवं 25 किलोग्राम/हे० जिंक का छिड़काव करें तथा अंतिम जुताई में 43 किलोग्राम यूरिया/हे०, 104 किलोग्राम ट्रिपुल सुपर फॉस्फेट, 125.25 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 10 किलोग्राम / हे० थिमेट (10 जी०) का प्रयोग करें एवं यूरिया का शेष मात्रा (43 किलो ग्राम/हे० से निकौनी के पश्चात् सिंचाई के समय उपनिवेशित करें।

शकरकन्द रोपने की विधियाँ:

शकरकन्द मुख्यतः तीन विधियों से लगाया जाता है जो स्थान के अनुसार परिवर्तित होते रहता है:

1. **समतल विधि:** उत्तरी बिहार में अधिकांशतः किसान इस विधि से लगाते हैं जिसमें पोध विन्यास 30 सेमी० × 30 सेमी० होना चाहिए।
2. **कुंड एवं मेड़ (फरो एण्ड रिज) विधि:** इसमें आलू के समान 60 से 75 सेमी० पर मेड़ बनाया जाता है। जिसकी ऊँचाई 36 सेमी० होनी चाहिए। कटा हुआ रोपनी योग्य लत्ती 25 सेमी० की दूरी पर तिरछी रूप से मेड़ पर हाथ से इस तरह लगाते हैं कि लत्ती का दो तिहाई (66.66 प्रतिशत) हिस्सा मिट्टी में गड़ा हों इस प्रकार की खेती बिहार के बेगुसराय जिला में कहीं–कहीं देखने के लिए मिलता है।
3. **गड्ढा विधि:** लगाने की विभिन्न विधियों में से यह विधि सबसे अधिक उपज देता है एवं अधिकांश बाजार योग्य कन्दों की प्राप्ति होती है। इसमें कन्दों का वजन 3–4 किलोग्राम प्रति कन्द होता हैं। इस विधि से खेती नदियों के किनारे सीमित है। जहाँ बाढ़ का पानी हटने के बाद सितम्बर–अक्टूबर (शरदकालीन रोप) या फरवरी के पूर्वार्द्ध (बसंतकालीन रोप) की जाती है। इस विधि में 2.5 से 3 फीट गहरा गड्ढा एक मीटर की दूरी पर खोद कर दो कटी हुई लत्ती जिसका दोनों सिरा बाहर रखकर पुनः गड्ढा भर दिया जाता है।

खेती के समय:

शकरकन्द की खेती छोटानागपुर के पठारी भाग (झारखण्ड) में वर्षा पर आधारित खरीफ मौसम में की जाती है जिसकी रोपनी वर्षा आगमन के पश्चात् जून–जूलाई में की जाती है। उत्तरी बिहार में शकरकन्द मुख्यतया सितम्बर–अक्टूबर माह में की जाती है जिसे शरदकालीन रोप कहते हैं। उपरी मैदानी भाग में सितम्बर माह में खेती की जाती है। लेकिन बाढ़ वाले क्षेत्र में बाढ़ का पानी हटने के बाद अक्टूबर

माह में भी शकरकन्द की रोपनी की जाती है तथा कुछ क्षेत्रों में फरवरी के पूर्वार्द्ध में की जाती है। जिसे बसंतकालीन रोप कहते हैं। मैदानी भागों में रोपनी की दूरी 30 सेमी० × 30 सेमी० एवं दियारा क्षेत्र में 45 सेमी० × 45 सेमी० लाइन से लाइन एवं पौधा से पौधा रखना चाहिए।

जल प्रबन्धनः

सिंचाई के साथ वर्षा के जल के लिए निकासी का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। रोपनी के तुरंत बाद सिंचाई करना चाहिए ताकि भूमि में 4–5 दिनों तक नमी बना रहे। शुष्क मौसम में 8–10 सिंचाई की आवश्यकता होती है। मिट्टी में नमी की कमी यदि फसल वृद्धि के प्रारंभिक काल (रोपनी के 4 सप्ताह बाद जब कन्द बनना शुरू होता है) में शत प्रतिशत कन्द उपज का ह्रास होता है जबकि लगाने के 75 दिन पश्चात् मिट्टी में नमी की कमी होने पर पच्चास प्रतिशत उपज का ह्रास होता है।

घास नियंत्रणः

फसल रोपरनी के चार सप्ताह या एक माह बाद एक बार खुरपी से घास निकालकर सिंचाई करना चाहिए। सिंचाई के पश्चात् नाइट्रोजन की शेष मात्रा (43 किलोग्राम यूरिया/हे०) से उपनिवेशन करना चाहिए। रोपनी के 45 दिन बाद खेत पूर्णरूपेण लत्ती से ढक जायेगा जिससे घास का नियंत्रण हो जायेगा।

फसल प्रणालीः

शकरकन्द विभिन्न फसल चक्र में उपयुक्त होता है जो स्थान–स्थान के अनुसार बदलते रहता है। देश के पूर्वी क्षेत्र में जूट या ऊँची भूमि धान के बाद शकरकन्द की खेती होती है।

उत्तरी क्षेत्र में,

शकरकन्द – मटर + जौ

मक्का – बोड़ा – शकरकन्द

दक्षिणी भारत में,

धान – धान – शकरकन्द

शकरकन्द – ज्वार या मुड़वा

शकरकन्द – शकरकन्द – दलहन या सनई (हरी खाद)

अन्तर्वर्ती खेतीः

बिहार एवं उत्तर प्रदेश में

शकरकन्द + मक्का

बिहार में शकरकन्द की दो सतही खेतीः

मिट्टी में छिछला एवं गहरा कन्द बनने वाली प्रजाति एकान्तर पंक्ति में लगाना उचित पाया जाता है। इसके लिए राजेन्द्र शकरकन्द–5 एवं क्रॉस–4 नामक प्रभेद 30 सेमी० की दूरी पर कतरों में एक के बाद रखकर लगावें तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 सेमी० रखकर 25–30 प्रतिशत अधिक उपज की प्राप्ति की जा सकती है।

विभिल नियंत्रणः

विभिल का पिल्लू (लार्वा) कन्द को क्षति पहुँचाता है। कन्द को वीमिल से आक्रमित होने पर यदि उबाला जाता है तो उसमें तारपीन के तेल समान गंध देने लगता है। जिससे मनुष्य के लिए खाने लायक नहीं रहता है। व्यस्क वीभिल कीट कोमल पत्ती, लत्ती एवं बाहर निकले कन्द खाता है। वीभिल शकरकन्द को काफी क्षति पहुँचाता है। इसके क्षति को कम करने के लिए निम्न विधियाँ अपनाने की सलाह दी जाती है।

i. शकरकन्द फसल वाले खेत में गंधपाश (फेरोमैन ट्रेप) लगाना जिसकी संख्या आठ प्रति हेक्टर है। इससे मर्दाना विभिल को फँसाकर नष्ट कर सकते हैं।
ii. चना, धनिया एवं मूली की शकरकन्द के साथ अन्तर्वर्ती खेती कर विभिल के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
iii. वैसे प्रभेद की खेती करें जो मिट्टी की गहराई में कन्द बनाता है। जिसके कन्द के गर्दन की लम्बाई अत्यधिक हो।
iv. वैसे प्रभेद की खेती करें जो कम समय में परिपक्व हो जाता है।
v. फसल चक्र धान–शकरकन्द–बोड़ा को अपनावें।
vi. शकरकन्द में मिट्टी चढ़ाकर विभिल के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
vii. विभिल मुक्त लत्ती या कन्द लगावें।
viii. महुआ या नीम खल्ली 25 क्विंटल/हेक्टर की दर से प्रयोग करें।
ix. भण्डारण में कन्द को लबड़ी की राख या लाल मिट्टी से ढककर रखने से विभिल का प्रकोप कम किया जा सकता है।

परवल फसल की देखभाल

डा0 प्रो0 मुकेश कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर, बिहार

परवल का जन्म स्थान भारत है। परवल का विस्तार यहीं से विश्व के अन्य देशों में हुआ है। भारत में उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल तथा तमिलनाडु राज्यों में परवल की खेती की जाती है। बिहार में परवल की व्यावसायिक स्तर पर खेती पटना, वैशाली, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, चम्पारण, सीतामढ़ी, बेगूसराय, खगड़िया, मुंगेर तथा भागलपुर में होती है।

बिहार में विस्तारपूर्वक परवल की खेती मैदानी तथा दियारा क्षेत्रों में की जाती है। परन्तु दियारा में परवल की भरपुर खेती होती है और उत्पादन भी अच्छी होती हैं परवल एक नगदी फसल है और इसे दियारा का ग्रीन गोल्ड अथवा गोल्डन वेजिटेबुल ऑफ दियारा कहा जाता है।

परवल कददू कुल की एक पौष्टिक सब्जी है। स्वास्थ्यवर्धक होने के कारण यह अधिक लोकप्रिय है। पोषण की दृश्टि से यह सब्जियों मे विशेष स्थान रखता है। किसान को आर्थिक सम्बलता प्रदान करने में भी परवल का कोई जबाव नहीं है। किसान भाइयों को परवल की खेती में एक और बात महत्वपूर्ण नजर आती है वो है परवल की तुड़ाई के बाद कई दिनों तक रखने पर भी खराब नहीं होने का गुण। अतः इनका भण्डारण कर दूर–दराज के बाजारों में बेचना सरल है। किसान भाई इतनी लाभप्रद खेती परवल की है फिर भी उपज कम होने के बहुतों कारण हैं। परवल लगाने के बाद खेत में परवल की लत एवं फल में कीट एवं रोग का समुचित उपाय न होना एवं देख–रेख का न हो पाना मुख्य है। किसान भाई फलों की तुड़ाई भी मुलायम एवं हरी अवस्था में सुर्योदय से पहले करना चाहिए। इससे फल अधिक समय तक ताजे बने रहते हैं व किसान भाइयों को अपने उत्पाद को दूर के मार्केट में भी ले जाने पर अच्छा मुनाफा हो पाता है। इसलिए उत्पादन को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों एवं रोगों से फसल को बचाना आवष्यक है।

किसान भाइयों परवल की अच्छी पैदावार के लिए फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीटों एवं रोगों से बचाना भी अति आवष्यक है। लाल मृंग कीट ऐसी कीट है जो परवल में पत्ते बनने के समय ही आक्रमण करता है और पत्तियों को खाकर नष्ट कर देता है। जिससे पौधे मर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए गोयठे की राख में किरासन तेल मिलाकर पत्तों पर प्रातः काल में छिड़काव करना लाभप्रद है। जयमेक्रान या नुवान का छिड़काव 3 मिली0 दवा 10 लीटर पानी में घोलकर करना फायदेमंद होता है।

किसान भाइयों परवल की खेती को दूसरी अत्यधिक नुकसान पहुँचाने वाली कीटों में फलों की मक्खी कीट है। यह मुलायम फलों के गुददे को खाकर फलों को सड़ा देता है। जिससे फसल को भारी नुकसान होता है। इसके नियंत्रण के लिए मालाथियान 1–1.5 मिली0 प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना लाभप्रद हैं किसान भाइयों तेज धूप में दवा का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

परवल की अच्छी उत्पादन में लाही कीट भी व्यवधान पैदा करती है। लाही छोटे–छोटे कीड़े होते हैं जो पौधे पर समूह में मौजूद होते हैं तथा ये पौधों के पत्तों एवं नये तनों का रस चूसकर पत्तियों एवं पौधों को पीला बना देते हैं। जिससे पौधों सुखकर मर जाते है।। इस कीड़े के नियंत्रण के लिए किसान भाई 0.1 प्रतिशत मालाथियान का छिड़काव सप्ताह में एक बार तब तक करते रहना चाहिए जब तक कि वे पूर्ण रुप से समाप्त नहीं हो जाये। इस दवा की मात्रा एक हेक्टेयर के लिए 2 लीटर होती है जिसे 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

परवल के पौधों को चूर्णिल आसिता रोग काफी हानि पहुँचाती है। पौधे के सभी हरे भागों पर सफेद पाउडर दिखाई पड़ता है। बाद में पत्तियाँ सुख जाती है। पौधों में वृद्धि रुक जाती है। नम मौसम में रोग तेजी से फैलता है। किसान भाई इस रोग से बचाव के लिए सल्फेक्स की 2.5 किलोग्राम मात्रा या कैराथेन की 1 लीटर मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मृदुरोमिल आसित रोग पत्तियों की उपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे बनाते हैं। इन धब्बों के ठीक नीचे पत्ती की निचली सतह पर धूल रंग के फफूँद के जाल दिखाई पड़ते हैं। पत्तियाँ मर जाती है और पौधों का बढ़वार रुक जाता है। इससे बचाव के लिए किसान भाई इन्डोफिल एम0 – 45 की 2 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें तो लाभ मिलेगा।

फल सड़न रोग खेत तथा भण्डारण में भी लग सकता है। फलों पर गीले गहरे हरे रंग के धब्बे बनते हैं। ये धब्बे बढ़कर फल को सड़ा देते हैं तथा इन सड़े फलों से बदबू आने लगती है। जो फल जमीन से सटा होता है वे ज्याद रोगी होता हैं सड़े फल पर रुई जैसा कवक दिखाई पड़ता है। इसके नियंत्रण के लिए फलों को जमीन के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहिए। इन्डोफिल एम –45 की 2 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

किसान भाईयों जोजैक एक वाइरस रोग है। रोग ग्रस्त पत्तियाँ झुर्रीदार, छोटी तना नीचे की ओर मुड़ जाती है। रोगी पौधों के तनों का रंग हरा एवं पीला हो जाता है। रोग ग्रस्त फल सफेद हो जाते हैं और फलों का आकार छोटा हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए रोगी पौधों को उखाड़कर फेंक देना चाहिए। साथ ही साथ रोगर नामक दवा की 0.03 प्रतिशत घोल का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिए।

सूत्रकृमि भी परवल की फसल को नुकसान पहुँचाती है। सूत्रकृमि से ग्रासित पौधे के जड़ों पर किसान भाई छोटे–छोटे ग्रंथियों को देख सकते हैं। छोटी तथा पीली पत्तियों का होना इसका मुख्य कारण है। इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रस्त पौधों की जड़ों को निकाल देना चाहिए। नीम अथवा अण्डी की खल्ली 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से फसल लगाने के सप्ताह पहले खेत में डालना अत्यन्त लाभप्रद होता है।

पटना जिला में मशरुम की संभावना एवं चुनौतियाँ

श्री राजीव कुमार एवं डॉ0 विनीता रानी

कृषि विज्ञान केन्द्र, पटना, बिहार

मशरुम का सफर आदिकाल से चला आ रहा है जब केवल राजा – महराजाओं तक इसका प्रयोग सीमित था। उस समय जन साधारण के लिए यह दुलर्भ था। मशरुम को भारत में विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है परन्तु सबसे प्रचलित नाम खुम्ब है। खुम्ब एक प्रकार का कवक है जो पर्णहरित नहीं होने के कारण प्रकाश संशलेषण नहीं कर पाता है तथा यह लिग्निन, सेल्यूलोज तथा हेमीसेल्यूलोज युक्त कार्बनिक पदार्थों से अपना भोजन ग्रहण करता है।

आज कृषि वैज्ञानिकों के अथक प्रयास से यह सर्वसुलभ हो पाया है एवं विभिन्न मौसम में इसकी खेती संभव हो पायी है। इसकी खेती में लागत कम तथा ज्यादा मुनाफा की संभावना है। इसकी खेती ग्रामीण युवकों एवं युवतियों के लिए अंशकालीन /पूर्णकालीन रोजगार का साधन बन सकता है तथा यह अवकाशप्राप्त व्यक्तियों एवं गृहणियों के लिए भी लाभकारी सिद्व हो सकता है। लघु एवं सीमांत कृषकों के लिए इसकी खेती और भी उपयोगी है एवं भूमिहीन कृषकों एवं कृषक मजदूरों के लिए पोषण सुरक्षा में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

खुम्ब में अन्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा ज्यादा प्रोटीन, विटामिन एवं मिनरल पाया जाता है। इसमें समस्त बीस प्रकार के एमीनो अम्ल तथा प्रचुर मात्रा में कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है जो मानव पोषण की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इसके सेवन से कई प्रकार के रोग जैसे दन्तक्षय, मोटापा, कब्ज, रक्तचाप, हृदयरोग, एनीमिया, गठिया, ट्यूमर, बवासीर इत्यादि से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता में बढत पायी जाती है।

खुम्ब के उपरोक्त गुणों को देखते हुए बिहार में भी इसके उत्पादन के लिए विभिन्न स्तर पर प्रयास हो रहे हैं जिससे यहाँ के किसान लाभान्वित हो रहे हैं। जहाँ तक पटना जिला का सवाल है यहाँ अब भी इसके विस्तार की असीम संभावना दिख रही है, पटना एवं राज्य के अन्य बाजारों में सालों भर इसकी माँग बनी रहती है। पटना जिला में इसकी खेती अभी भी व्यवसायिक स्तर पर नहीं होकर छोटे एवं छिटपुट स्तर पर ही हो रही है। इसके प्रचार प्रसार के लिए विभिन्न संस्थाएं जैसे राष्ट्रीय बागवानी मिशन, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, कृषि अनुसंधान संस्थान, पटना, कृषि विज्ञान केन्द्र, पटना एवं गैर सरकारी संगठन प्रयासरत हैं।

पटना जिला में अभी भी सर्वाधिक उत्पादन ऑयस्टर मशरुम का होता है परन्तु बटन मशरुम की माँग बाजार में सर्वाधिक रहती है। इसके उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि नही होने का मुख्य कारण किसानों के बीच इसको लेकर फैली भ्रांतियों के साथ–साथ तकनीकी कौशल का अभाव भी इसके प्रसार में एक प्रमुख बाधक है। गुणवत्तापूर्ण स्पॉन की उपालब्धता भी इसके प्रसार में एक मुख्य बाधा है।

इन सब बाधाओं को देखते हुए वर्ष 2013 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर के सहयोग से कृषि विज्ञान केन्द्र, बाढ, पटना में स्पॉन उत्पादन इकाई का शुभारंभ हुआ जिसके फलस्वरुप जिला में गुणवत्तापूर्ण स्पॉन की उपलब्धता सुनिश्चित हो पायी है। कृषि विज्ञान केन्द्र, बाढ, पटना द्वारा 2013 से अब तक कुल 900 कृषकों को प्रशिक्षण के माध्यम से खुम्ब उत्पादन हेतु दक्ष बनाया जा चुका है। लगभग 292 कृषकों के प्रक्षेत्र पर अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण कर इसकी खेती से लाभ एवं इसकी खेती में संभावना पदर्शित किया जा चुका है जिसके परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहे हैं। वर्तमान में बाढ, पंडारक, मोकामा एवं विक्रम में इसकी खेती काफी जोर पकड़ चुकी है। वैसे किसान जो आयस्टर मशरुम की खेती करते थे वे अब श्वेत दूधिया मशरुम एवं बटन मशरुम की भी खेती करने लगे हैं। वर्ष 2015–16 में जीविका समूहों को भी कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रशिक्षण एवं प्रत्यक्षण के माध्यम से आत्मनिर्भर करने का प्रयास किया जा रहा है जिसका परिणाम आने वाले वर्षों में देखा जा सकता है।

जहाँ तक इसके उत्पादन मे चुनौतियों का सवाल है तो पूर्ण बाजार व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कारक है, क्योकि जो किसान व्यावसायिक स्तर पर इसका उत्पादन कर रहे हैं वे बार बार इसके बाजार के बारे में जानकारी चाहते हैं। अतः इसकी खेती को और आगे बढाना है तो सभी संस्थाओं को समन्वित रुप से एक सुदृढ बाजार की भी व्यवस्था करानी होगी ताकि किसान बिचौलियों के हाथों में जाने से बच सकें एवं उन्हें उनकी मेहनत का उचित पारश्रमिक मिल सके ।

गुणवत्तापूर्ण स्पॉन की उपलब्धता दूसरी प्रमुख चुनौती है जो इसके व्यापक प्रचार एवं प्रसार में बाधक है अतः विभिन्न प्रखंडों में इसके स्पॉन उत्पादन प्रयोगशाला की स्थापना पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अगर इन चुनौतियों से निपट लें तो पटना जिला खुम्ब उत्पादन एवं विपणण में देश में एक महत्वपूर्ण मुकाम हासिल कर लेगा।

अगर मैं एकदिन मर जाऊं तो मैं ख़ुशी से जाऊँगा क्योंकि मैंने अपना सर्वश्रेष्ठ करने की कोशिश की। मेरे खेल ने मुझे ऐसा करने दिया क्योंकि ये दुनिया का सबसे बड़ा खेल है।

– पेले

खगड़िया जिले में दुग्ध उत्पादन की वर्तमान स्थिति एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया का अंगीकृत गाँव मेहसौड़ी में योगदान

डा0 ब्रजेन्दु कुमार एवं डा0 सत्येन्द्र कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया, बिहार

1. परिचय

बिहार के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 35 प्रतिशत योगदान कृषि एवं अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों का है जिसका एक चौथाई पशुपालन क्षेत्र से आता है। राज्य के अन्य जिले की तरह खगड़िया जिले की अधिकांश (94.4 प्रतिशत) जनसंख्या गाँव में रहती है जो समस्त बिहार के ग्रामीण जनसंख्या प्रतिशत (88.69%) से अधिक है। जिले की ग्रामीण अर्थव्यस्था मुख्य रूप से कृषि एवं उससे सम्बद्ध क्षेत्रों जैसे उद्यानिकीए पशुपालन, मत्स्यपालनए वानिकी इत्यादि पर निर्भर है। कृषि एवं पशुपालन क्षेत्र का सम्मिलित रूप से खगड़िया जिले के सकल घरेलू उत्पाद का 99 प्रतिशत योगदान है। साथ ही जिले के दुग्ध उत्पादन का पशुपालन व्यवसाय में 70 प्रतिशत योगदान है। दुग्ध उत्पादन पौष्टिक खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने के साथ आय एवं रोजगार के महत्वपूर्ण अवसर पैदा करता है। पशुधन की अधिकताए उन्नत तथा संकर नस्लों के गाय एवं उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले भैंस के पालन से यह व्यवसाय ग्रामीणों के लिए अत्यंत लाभप्रद साबित हो रहा है। छोटे किसानों के लिए दूध एक नकदी फसल की तरह है जिसके उत्पादन में पारिवारिक श्रम का प्रयोग कर निम्न मूल्य वाले फसल उत्पाद एवं अवशेषों को उच्च मूल्य वाले उत्पाद में बदला जाता है।

2. खगड़िया जिले में दुग्ध उद्योग की वर्तमान स्थिति

2.1 दुधारू पशुओं की संख्या – सरकारी आंकड़ों के अनुसार खगड़िया जिले में दुधारू पशुओं की संख्या वर्ष 2003 में 2,81,403 से बढ़कर वर्ष 2007 में 3,68,456 तथा 2012 में 4,02,626 हो गयी। इस अवधि में भैंसों की संख्या 82687 से बढ़कर 135208 हो गई। वर्ष 2012 में दुधारू पशुओं की कुल संख्या का 66 प्रतिशत गायें थीं। दुधारू पशुओं की संख्या में उच्च वृद्धि पशुपालकों में इस व्यवसाय के प्रति आर्कषण को दर्शाता है।

2.2 दुग्ध उत्पादन – पशुपालन विभाग एवं सुधा डेयरी के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2013 में खगड़िया जिले में गाय से 512.10 लाख लीटर तथा भैंस से 38.30 लाख लीटर दूध प्राप्त हुआ (चित्र संख्या –1)। गाय एवं भैंस के दुग्ध उत्पादन में वर्ष 2010 से 2013 तक लगातार वृद्धि दर्ज की गई। भैंस के दूध की उत्पादकता गाय की तुलना में अत्यधिक कम पाई गयी।

2.3 दुग्ध विपणन – हाल के वर्षो में दुग्ध उत्पादन सहयोग समितियों द्वारा संचालित आधुनिक दुग्ध विपणन प्रणाली का विकास हुआ है लेकिन अभी भी परम्परागत तरीके विपणन प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिले के संपूर्ण उत्पादित दुग्ध का लगभग 48 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों द्वारा तथा 42 प्रतिशत सहयोग समितियों द्वारा विपणन होता है। खगड़िया जिले मे दुग्ध उत्पादन समितियॉ मुख्य रूप से सुधा डेयरी द्वारा संचालित हैं। समिति के सदस्य दूध को नजदीकी दूध संग्रह केन्द्र पर लाते हैं जहॉ से इसे शीतक केन्द्रों पर भेजा जाता है। पुनः प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग के लिए दूध को सुधा डेयरी, बरौनी भेजा जाता है। सुधा डेयरी अपने समिति के सदस्यों को जरूरत पड़ने पर ऋण एवं दुग्ध उत्पादन के लिए तकनीकी सहयोग प्रदान करती है। वर्ष 2009 से 2013 तक दुग्ध उत्पादक समितियों की संख्या जिले में 173 से बढ़कर 381 हो गयी।

चित्र संख्या –1 खगड़िया जिले का दुग्ध उत्पादन

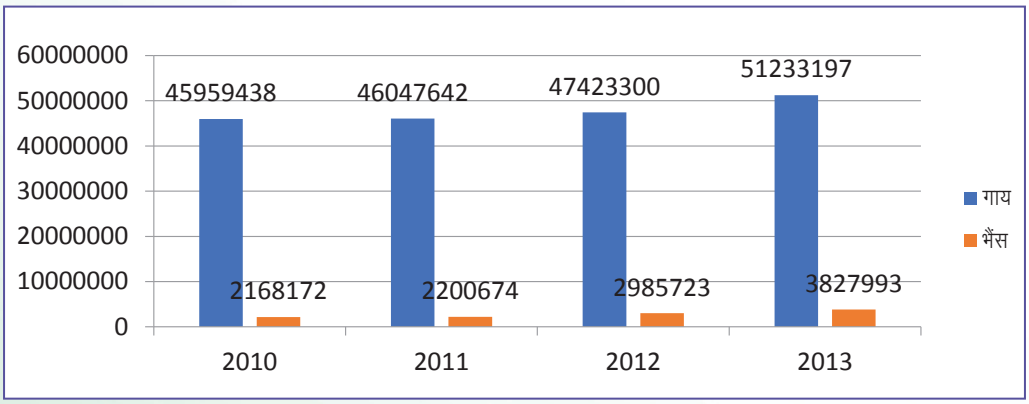

स्रोत :– सुधा दुग्ध उद्योग, खगड़िया

2.4 दुग्ध उत्पादन से जुड़ी आर्थिक गतिविधियॉ – वर्ष 2013 में खगड़िया जिले के कुल दुग्ध उत्पादन का 46 प्रतिशत व्यापार द्रव्य दूध के रूप में, 27.50 प्रतिशत घी के रूप में, 11 प्रतिशत खोवा तथा पेड़ा के रूप में, 8.50 प्रतिशत पनीर तथा छेना के रूप में तथा 7 प्रतिशत दही के रूप में हुआ ।

2.5 विभिन्नश्रेणी के उत्पादकों का दुग्ध उत्पादन में योगदान – खगड़िया जिले के दुग्ध उत्पादन व्यवसाय में भूमिहीन तथा सीमान्त कृषकों की संख्या सर्वाधिक है जो उनके जीविकोपार्जन का प्रमुख स्त्रोत है। तालिका 1 एवं 2 से यह स्पष्ट है कि यद्यपि भूमिहीन, सीमान्त तथा लघु कृषकों की संख्या दुग्ध उत्पादकों के कुल संख्या का 87.90 प्रतिशत है लेकिन कुल दुग्ध उत्पादन में उनका योगदान मात्र 63.50 प्रतिशत है। यह कमी उनके पशु प्रबंधन में खामियों तथा निम्न श्रेणी के नस्लों के पालन के कारण हो सकती है। साथ ही प्रति इकाई पशुओं की संख्या तथा उनके उत्पादकता में सीधा सम्बन्ध है । ज्यादा दुधारू पशुओं की संख्या रखने वाले किसान डेयरी व्यवसाय के प्रति उद्योग की तरह रूचि रखते हैं।

तालिका 1: दुग्ध उत्पादकों के विभिन्न श्रेणियों का प्रतिशत

दुग्ध उत्पादको की श्रेणी	प्रतिशत
भूमिहीन	26.20
सीमान्त	45.10
छोटा	16.60
मध्यम	08.10
बड़ा	04.00

तालिका 2: दुग्ध उत्पादकों के विभिन्न श्रेणियों का दुग्ध उत्पादन एवं विपणन में सहभागिता

श्रेणी	दूध उत्पादन (लीटर/दिन)	दुग्ध उत्पादन में सहभागिता (प्रतिशत)
दुग्ध उत्पादको की श्रेणी		
भूमिहीन	1-9	15-2
सीमान्त	2-1	33-7
छोटा	3-6	16-8
मध्यम	4-6	17-4
बड़ा	7-5	16-9
प्रति किसान पशुओं की संख्या		
एक पशु	2.4	52-7
दो पशु	5-1	33-3
तीन पशु	5-3	08-3
तीन से अधिक पशु	11-9	05-7

3. अंगीकृत ग्राम मेहसौड़ी की वर्तमान परिदृश्टि

मेहसौड़ी ग्राम खगड़िया जिले के सदर प्रखंड में जिला मुख्यालय से 6 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है। गांव की कुल आबादी लगभग 6200 और परिवारों की संख्या 1856 है। गांव की जनसंख्या के लगभग 50 प्रतिशत बी.पी.एल. कार्डधारी हैं और बाकी जनसंख्या में भी अधिकांश गरीब एवं सीमांत किसान हैं। गांव के अधिकांश लागों के लिए कृषि आय का प्रमुख स्त्रोत है जिसके बाद मजदूरी एवं पशुपालन का स्थान आता है। मौसम के बढ़ते अनिश्चिता के कारण कृषि क्षेत्र से जीविकोपार्जन का सुनिश्चित स्त्रोत नहीं रहा है और इस परिस्थिति में पशुपालन आय का एक बेहतर विकल्प साबित हो रहा है। वर्ष 2012 में कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा मेंहसौड़ी ग्राम अंगीकृत किया गया। उस समय गॉव के अधिकांश पशुपालक पशुपालन को अपनी जरूरतो को पूरा करने के लिए तथा कुछ हद तक आय के स्त्रोत में रूप में उपयोग करते थे। लगभग 27 प्रतिशत परिवार ही पशुपालन व्यवसायिक स्तर पर कर पर रहे थे। इसका मूल कारण पशुओं

का खराब प्रबन्धन तथा अधिक संख्या में अनुत्पादक पशुओं का होना था। कृषि विज्ञान केन्द्र के सर्वेक्षण से पता चला कि गॉव में मौजूद गाय और भैंसों में 53 प्रतिशत गाय तथा 34 प्रतिशत भैंस ही दुधारू अवस्था मे थीं। कृषकों के पशुओं को रखने की क्षमता उनके आर्थिक क्षमता तथा जोत भूमि के आकार पर निर्भर करता था। तालिका 4 से स्पष्ट है कि दुग्ध उत्पादन एवं विपणन का एक बड़ा हिस्सा सामान्य वर्ग श्रेणी के लोगों द्वारा किया जाता है।

तालिका 3: मेहसौड़ी ग्राम की वर्तमान स्थिति

क्र.सं.	अभियुक्ति	संख्या
1	परिवारों की संख्या	1856
2	जनसंख्या	6200
3	परिवारों का औसत आकार	5–7
4	जाति संरचना	अ.जा–805, अ.जन जा.– 0, अत्यंत पिछड़ा वर्ग–1702, सामान्य वर्ग – 3693
5	गायो की संख्या	3812
6	भैसों की संख्या	246

मेहसौड़ी ग्राम के दुग्ध विपणन प्रणाली संरचना के अध्ययन से ज्ञात हआ है कि गाँव में उत्पादित दूध का 85 प्रतिशत (तालिका: 5) से अधिक हिस्से का सुधा डेयरी के द्वारा विपणन होता है।

तालिका 4: दुग्ध सहयोग समितियों में मेहसौड़ी ग्राम के विभिन्न वर्गो की सहभागिता

जाति समूह	दुग्ध सहयोग समितियों की सदस्यता		परिवार की संख्या	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
अनुसूचित जाति	40	8.03	240	12.93
अति पछिड़ा वर्ग	82	16.47	386	20.80
सामान्य	376	75.50	1230	66.27
कुल संख्या	498	100.00	1856	100.00

तालिका 5: मेहसौड़ी ग्राम के कृषकों का विभिन्न संस्थाओं द्वारा चलांए जा रहे सहयोग समितियों के दूध संग्रह मे सहभागिता

क्र.सं.	दुग्ध सहयोग समितियों के नाम	व्यक्ति की संख्या	प्रति दिन औसत दूध संग्रह
1	सूधा डेयरी ए	40	200 लीटर
2	मेहसौड़ी बी सूधा डेयरी	200	850 लीटर
3	गौड़शक्ति सूधा डेयरी	176	690 लीटर
4	गंगा डेयरी	82	टर

4. कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया द्वारा किए गए कार्य

उपरोक्त पृष्ठभूमि में कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया ने 2012 वर्ष में मेहसौड़ी ग्राम को अंगीकृत कर प्रशिक्षण, अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण, ऑन फार्म ट्रायल तथा सलाहकार सेवा द्वारा दुग्ध उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु समन्वित प्रयास शुरू किया। इसमें दुधारू पशुओं के नस्ल में सुधार, बेहतर आहार तथा रखरखाव प्रबन्धन, सालोंभर हरे चारे की उपलब्धिता सुनिश्चित करने आदि प्रयास (तालिकाः 6) शामिल थे।

तालिका 6: कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा किये गये कार्यो की विवरणी

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र के कार्य	पशुपालकों की संख्या
1	पशुओं नस्ल में सुधार उनके रखरखाव, उनके आहार प्रबंधन, रोगों के उपचार एवं उनसे बचाव पर प्रशिक्षण	188
2	डिवर्मर तथा पशुओं के चारा घास पर अग्रीम पंक्ति प्रत्यक्षण	35
3	पशुओं के विभिन्न रोगों से बचाव हेतु वैक्सीनेसन कार्यक्रम	67
4	पशुओं के दैनिक आहार में हर्बल गेलेक्टोगोग के उपयोग पर ऑन फार्म ट्रॉयल के माध्यम से जागरूकता कार्यक्रम	30
5	उपरोक्त विषयों पर सलाहकार सेवा	125

5. कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया द्वारा किए गए कार्य के प्रभाव का आकलन

कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा गठित अन्वेषण टीम ने व्यक्तिगत साक्षत्कार, प्राथमिक तथा द्वितीयक स्त्रोत से प्राप्त सूचना और समूह परिचर्चा के उपरांत प्राप्त जानकारी के आधार पर केन्द्र के कार्यों के प्रभाव का आकलन किया। जानकारी एकत्र करने के लिए विभिन्न जाति, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर के पशुपालक को चुना गया।

6. कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा किये गये कार्य का दुग्ध उत्पादन एवं प्रबंधन पर प्रभाव

दुग्ध उत्पादकता कम होने का एक प्रमुख कारण कम उत्पादकता वाले पशुओं के नस्ल का पालन, पशुओं के अस्वास्थ्यकर तरीके से रखरखाव, उनके असंतुलित आहार तथा रोगों से वचाव हेतु उचित सुरक्षात्मक उपाय नहीं करना इत्यादि था। इस हेतु प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण, ऑन फार्म ट्रायल तथा सलाहकार सेवा द्वारा पशुपालकों को जागरूक किया गया। प्रशिक्षण एवं सलाहकार सेवा के माध्यम से पशु के झुण्ड के आकार का दुग्ध उत्पादन की आर्थिकी पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में पशुपालकों को अवगत कराया गया जिसके फलस्वरूप उनके द्वारा पालन किए जाने वाले पशुओं के झुण्ड का औसत आकार वर्ष 2012 में 1.23 से बढ़कर वर्ष 2016 में 1.81 हो गया । फलस्वरूप उनको इस व्यवसाय से होने वाले लाभ में बढ़ोतरी हुई। साथ ही कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया के कार्यो का प्रभाव पालन किए जाने वाले नस्लों में सुधार, उनके रखरखाव एवं आहार प्रबन्धन, रोगों से बचाव इत्यादि पर प्रबल रूप से पड़ा जिसे तालिका 7 के माध्यम से दर्शाया गया है। प्रशिक्षण से पहले पशुपालकों के पोषणयुक्त मिश्रित आहार तैयार करने के

प्रति काफी उदासीनता देखी गयी। लगभग 40 प्रतिशत पशुपालकों ने प्रशिक्षण उपरान्त आवश्यक पोषक पदार्थ युक्त मिश्रित आहार तैयार करना शुरू किया जिसका प्रभाव पशुओं के दुग्ध उत्पादकता पर पड़ा। कृषि विज्ञान केन्द्र के उपरोक्त प्रयासों से मेहसौड़ी ग्राम में पशुपालन मे होनेवाली खामियों को दूर करने के प्रति पशुपालकों के जागरूकता में अत्यधिक वृद्धि दर्ज की गई जिसके फलस्वरूप दुग्ध उत्पादन 2012 वर्ष में 14608 लीटर प्रति दिन से बढ़कर 2016 वर्ष में 16232 लीटर प्रति हो गया एवं तदनुसार दुग्ध उत्पादकता में 6 प्रति लीटर प्रति गाय से बढ़कर प्रति लीटर प्रति गाय हो गई।

तालिका 7: कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया द्वारा किए गए कार्य का प्रभाव

क्रं.सं.	सूचक	वर्ष	
		2012	2016
1	पशुओं के आहार का उचित प्रबंधन	17 %	56 %
2	रिपीट ब्रीडिंग नियंत्रण एवं उससे बचाव	शुन्य	32 :
3	भैक्सीनेशन	50%	85 %
4	पशुओं का उचित रखरखाव	10 %	43 %
5	प्रति परिवार पशुओं के झुण्ड का आकार	1-23	1-81
6	रोगों का प्रबंधन	11 %	63 %
7	दुग्ध उत्पादन	14608 लीटर/दिन	16232 लीटर/दिन
8	दुग्ध उत्पादकता (प्रति गाय प्रति दिन)	6 लीटर	7.22 लीटर
8	डेयरी सहायोग समिति द्वारा दुग्ध विपणन	1540 लीटर/दिन	1985 लीटर/दिन
9	दूध का नीजि उपयोग	13060 लीटर/दिन	14247 लीटर/दिन

7. निष्कर्ष:

उपरोक्त अध्ययन पर्दर्शित करता है कि कृषि विज्ञान केन्द्र के सुनियोजित ढ़ग से किये गये समन्वित प्रयास के फलस्वरूप पशुपालकों मे उचित ढंग से पशुपालन करने हेतु जागरूकता बहुत बढ़ी है जिसका परिणाम पशुओं के बेहतर रखरखाव, नस्ल में सुधार, आहार प्रबन्धन तथा रोगों से वचाव इत्यादि विषयों में दिखता है। उपरोक्त प्रयासों के फलस्वरूप पशुओं के उत्पादकता तथा दुग्ध उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया को अपना प्रयास आगे बढ़ाते हुए पशुओं के झुण्ड के आकार में बढ़ोतरी कर पशुपालन के एक महत्वपूर्ण उद्यम के रूप में विकसित करना है।

कृषि एवं जलवायु

श्री सुनील कुमार चौधरी एवं डा0 मनोज कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, सुपौल, बिहार

खेती में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि से जुड़े उद्योगों पर आधारित है। भारत भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से विश्व का सातवॉ देश है, परन्तु जनसंख्या में इनका दूसरा स्थान है। बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, कृषि योग्य भूमि में कमी, प्राकृतिक आपदाओं का आगमन भारत में कृषि वर्षा पर आधारित है एवं अधिकतर किसान छोटे और सीमांत वर्ग के हैं जो कि सिंचाई के लिए पर्याप्त साधन नहीं जुटा पाते है। वैसे तो पूरे वर्ष की वर्षा कृषि को प्रभावित करती है पर मानसून की वर्षा का अहम् योगदान है।

जलवायु परिवर्तन का कृषि पर प्रभावः

जलवायु परिवर्तन के कारण आने वाले समय में फसलों की उत्पादकता में गिरावट आने की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता है। दक्षिण एशिया के तापमान में 2.5^{0}C से ज्यादा की बढ़ोत्तरी असिंचित गेहूँ एवं धान की पैदावार में महत्वपूर्ण गिरावट ला सकती है। इससे खेत से होनेवाली आमदनी 9–25 प्रतिशत तक घट सकती है।

धान के उत्पादन एवं पर्यावरण में जलवायु परिवर्तन का असरः

विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं द्वारा किए गये अनुसंधान द्वारा यह पाया गया है कि धान की खेती लायक भूमि में 18 से 51 प्रतिशत कमी उष्णकटीबन्धिय क्षेत्रों में हो सकती है। वर्तमान काल के समशीत (टेम्प्रट) क्षेत्रों में कृषि लायक भूमि की बढ़ोत्तरी हो सकती हैं, वर्षा एवं हिमखंड स्त्रोत से आनेवाले नदियों के पानी में कमी आ सकती है। समुद्री जलस्तर में वृद्धि से खेती उपयुक्त भेमि की कमी हो सकती है एवं मृदा लवणता बढ़ने से उपज में कमी आ सकती है। नदीयों के पानी में कमी आ सकती है। समुद्री जलस्तर में वृद्धि से खेती उपर्युक्त भूमि की कमी हो सकती है एवं मृदा लवणता बढ़ने से उपज में कमी आ सकती है। नदियों के पानी में कमी होने से दियारा क्षेत्र में लवणता का प्रभाव बढड़ेगा। 30 से 35 डिग्री औसत तापमान धान के पौधे की वृद्धि के लिए एवं 22 से 29 डिग्री समय में तापमान धान उत्पादन के लिए बेहतर माना जाता है। आने वाले समय में ज्यादा गर्मी के असर से कम कल्लें फूटने की बाली में कम धान बनने की एवं उपज कम होने की सम्भावना है। कीट एवं बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है।

वर्षा की पहले या देर से शुरूआत एवं पहले समापन, लम्बा अन्तराल एवं कम समय में ज्यादा वर्षा के कारण बाढ़ एवं सुखाड़ का प्रभाव हो सकता है। उष्णकटिबन्धी क्षेत्रों से समशीतल क्षेत्रों में धान की खेती के स्थान बदलाव से भारी मात्रा में खाद्य पदार्थों की गतिविधि एवं लोगों का पालायन हो सकता है।

गेहूँ की खेती एवं जलवायु परिवर्तनः

बढ़ा हुआ तापमान फसल की अवधि एवं हरे क्षेत्रफल को घटाता है, साथ–साथ हरे रंगद्रव्य के ह्रास को भी बढ़ाता है। न्यूनतम तापमान में वृद्धि, चयापचन में वृद्धि लाती है। इन सभी कारणों से पौधों के प्रकाश संश्लेषण दर में गिरावट आती है और अंततः पैदावार में कमी आती है। 14^0C–22^0C के तापमान पर दानों की संख्या 4 प्रतिशत प्रति ^0C के दर से कम होती है। प्रति डिग्री से0 की बढ़ोत्तरी से गेहूँ के दानों के वजन में 2.5 प्रतिशत तक की गिरावट आ सकती है।

बिहार में खेती पर जलवायु परिवर्त्तन का असरः

पूर्वी क्षेत्र के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का अनुसंधान परिसर में किए गये मॉडल आधारित अध्ययन द्वारा यह पाया गया है कि बिहार में भी इस सदी के अंत तक धान, गेहूँ एवं खरीफ मक्का की उत्पादन क्षमता में कमी आ सकती है, लेकिन रबी मक्का उत्पादकता में बढ़ोत्तरी एवं चना में भी हल्की बढ़ोत्तरी हो सकती है। वर्तमान तापमान से 2 से 5 डिग्री तक की बढ़ात्तरी धान, गेहूँ एवं खरीफ मक्का के लिए प्रतिकूल हो सकती है। रबी में वर्तमान परिस्थिति में दिसम्बर–जनवरी में तापमान 10 डिग्री से नीचे जाता है जिससे मक्का की उत्पादकता में प्रभाव पड़ता है। आने वाले समय में बढ़ते तापमान के साथ रबी मक्का की उत्पादकता बढ़ सकती है। आगे के समय में उन्नत प्रभेदों के इस्तेमाल एवं जलवायु आधारित कृषि कार्यों के अनुकूलन द्वारा धान एवं गेहूँ में आनेवाली कमियों की भरपायी की जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन से अनुकूलन के लिए तकनीकी विकल्पः

फसलों के अनुकूलन का आर्थ है, कृषि की जलवायु परिवर्तन का सामना करने की क्षमता। आने वाले समय में किसानों को जलवायु परिवर्त्तन के कारण नई समस्याओं का समाना करना पड़ सकता है, जैसे–औसत से अधिक तापमान, अत्यधिक गर्म दिनों की संख्या में वृद्धि, फसलों का कम समय में विकसित होना, सूर्य विकिरण में वृद्धि, आर्द्रता में कमी, सिंचाई के कारण मिट्टी की लवणता में वृद्धि एवं नई बिमारियों और कीड़ों का समायोजन।

उपरोक्त समस्याओं से बचाव हेतु निम्नलिखित तकनीकी विकल्पों पर विचार किया जा सकता है।

- धान एवं गेहूँ की उचित किस्मों का चुनाव।
- फसलों की उच्च पैदावार वाली क्षेत्रों की पहचान करना।
- धान एवं गेहूँ की आगात बुआई, ताकि फूल एवं फल पकड़ने के समय गर्मी कम हो।
- फसलचक्र में बदलाव एवं उसकी जानकारी किसानों तक पहुँचाना।
- अनुवांशिक स्तर पर परिवर्तित उन्नत किस्मों का विकास करना ।
- उन्नत कार्य क्षमता वाली सिंचाई व्यवस्था अपनाना एवं प्रोत्साहित करना।

- मिट्टी जैसी प्राकृतिक संपदा का बचाव।
- कृषक समुदाय को प्राकृतिक संपदा के उचित प्रबंधन का ज्ञान देना।
- अनुवांशिक परिवर्तित एवं कृषि–जैव विविधता का बचाव।
- संरक्षण तकनीकों पर राष्ट्रीय स्तर की नीतियों का विकास एवं उन नीतियों को लागू करना।
- कृषि आधारित उद्योगों का विकास करना।

जलवायु परिवर्तन से बचाव के लिए किसानों को सुझावः

- गॉवों का वातावरण एवं खेतों का बचाव जरूरी है।
- एक पेड़ काटने पर एक पेड़ जरूर लगाना चाहिए।
- खेती में संसाधन सरक्षण तकनीकों को अपनाना चाहिए।
- जैविक खेती को बढ़ावा देना चाहिए।
- खाद्य एवं रासायनिक पदार्थों का प्रयोग सही समय, सही मात्रा एवं सही तकनीक के द्वारा करना है।
- पानी का उपयोग सही मात्रा में, सही समय में एवं सही तकनीक अपनाकर पानी की बचत करनी चाहिए।
- ऊर्जा बचाने का तरीका इस्तेमाल करना चाहिए।
- ये बात इस लोकोक्ति द्वारा साफ होती है, कि ''पानी बरसे बहन न पावे, तब खेती का मजा दिखावे''।
- इसके लिये मेढ़ की उँचाई बढ़ाकर खेतों में पानी को संग्रहित करना चाहिए।

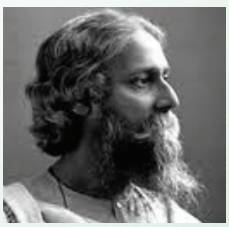

तितली महीने नहीं क्षण गिनती है, और उसके पास पर्याप्त समय होता है।

– रबिन्द्रनाथ टैगोर

सूक्ष्म सिंचाई पद्धति में फिल्टर का महत्व एवं उनकी उपयुक्तता

श्री मनोज कुमार राय एवं डा0 ब्रजेन्दु कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, खगड़िया, बिहार

परिचय

नलकूप, नहर, नदी, कुआँ इत्यादि सिंचाई के प्रमुख जल स्रोत हैं जिसमें अशुद्धियाँ विभिन्न मात्रा में तैरते हुए कण, घुले हुए ठोस पदार्थ या प्लवमान ठोस के रूप में रहता है। दाबीय सिंचाई पद्धति यथा सूक्ष्म सिंचाई पद्धति के सफलतापूर्वक एवं दक्ष रूप से कार्य करने हेतु सिंचाई जल की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है। सिंचाई जल में अशुद्धता एमिटर के छिद्र में अवरोध पैदा कर सकता है जिसके फलस्वरूप खेतों में जल का असमान वितरण होता है। एमिटर में अवरोध दो महत्वपूर्ण कारकों एमिटर के प्रवाह छिद्र का आकार तथा छिद्रनली में जल के वेग पर निर्भर करता है। छिद्र नली में जल के प्रवाह का वेग 4 से 6 मी./से. रहने पर एमिटर में अवरोध पैदा होने की समस्या बहुत कम पाई गई है। ड्रिप सिंचाई पद्धति में रन्ध्र (ओरीफिश) प्रकार के एमिटर का अनुप्रस्थ काट 0.2 से 0.6 मि.मी. तथा लम्बा पथ एमिटर का अनुप्रस्थ काट 0.5 से 1.4 मि.मी. होता है। भारतवर्ष में प्रचलित फव्वारा सिंचाई में सामान्यतः 1.5 से 6 मि.मी. वाले व्यास का नोजल उपयोग होता है। नोजल के व्यास से बड़ी सभी प्रकार की अशुद्धियाँ को फिल्टर द्वारा अवश्य हटाया जाना चाहिए। सामान्यतः प्रवाह छिद्र के व्यास के दसवॉ भाग से बड़े अशुद्ध पदार्थो को हटाने की अनुशंसा की जाती है। सिंचाई जल की गुणवत्ता को भौतिक उपचार (फिल्टर द्वारा शुद्धिकरण) अथवा रसायनिक उपचार द्वारा बढ़ाया जा सकता है। दाबीय सिंचाई पद्धति में जल में उपस्थित ठोस अशुद्धियों को हटाने के लिए छन्ना (फिल्टर) का उपयोग किया जाता है। सिंचाई जल से ठोस अशुद्धियों को हटाने के लिए विभिन्न प्रकार के फिल्टर विकसित किए गये है। ये फिल्टर दाबीय सिंचाई पद्धति के लम्बे समय तक कार्य करने में सहायक होते है तथा उनके रख–रखाव पर होने वाले खर्च में कमी लाते हैं।

आवश्यक छन्ना पद्धति सिंचाई जल में उपस्थित अशुद्धियों के प्रकार एवं मात्रा तथा नोजल के सही–सही कार्य करने हेतु जल की गुणवत्ता के स्तर पर निर्भर करता है। इस लेख में विभिन्न प्रकार के उपलब्ध फिल्टर, उनका कार्य सिद्धांत, गुण एवं दोष, विभिन्न प्रकार के अशुद्धियों वाले जल के लिए उनके उपयुक्तता की चर्चा की जा रही है जिससे कि सूक्ष्म सिंचाई पद्धति में फिल्टर का दक्षतापूर्वक उपयोग किया जा सके।

फिल्टर के प्रकार

सिंचाई जल को छानने के लिए प्रयोग किये जाने वाले फिल्टर को सामान्यतः निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) समतल फिल्टर यथा कार्ट्रिज (मोटा कागज) फिल्टर, जाली फिल्टर, चकती (डिस्क) फिल्टर

(ब) हाइड्रोसाइक्लोन फिल्टर

(स) माध्यम (मीडिया) फिल्टर

इन सभी फिल्टर की चर्चा आगे की जा रही है

कार्ट्रिज फिल्टर

कार्ट्रिज फिल्टर

अधिकांश कार्ट्रिज फिल्टर में एक पेपर होता है जो जाली फिल्टर के तरह कार्य करता है। पेपर जाली के छोटे छिद्रों से साफ जल प्रवाहित होता है तथा ठोस पदार्थ जाली के सतह पर जमा होते जाता है फलस्वरूप शनैः शनैः छिद्रक बंद होते जाते हैं। अधिसंख्य फिल्टर पेपर (कार्ट्रिज) गन्दे होने पर बदल दिये जाते है। 11.4 क्यूबिक मीटर प्रति घंटा से कम प्रवाह वाले जल छिद्रित झिल्ली द्वारा प्रवाहित होता है । फिल्टर के दोनो सिरे के बीच दाब हानि 138 किलो पास्कल तक सामान्यतः मान्य है। इस तरह के फिल्टर में शुरूआती खर्च कम परन्तु उनका रखरखाव खर्चीला होता है तथा ये कम प्रवाह तथा कम ठोस सान्द्रता वाले जल के लिए ही उपयुक्त होता है।

जाली फिल्टर

जाली फिल्टर स्टेनलेस स्टील अथवा मजबूत नाइलॉन जाली का बना होता है। फिल्टर को परिभाषित करने वाले मुख्य मापदंड हैं – घनत्व या मुटाई (तार का व्यास), तारों के बीच की दूरी, खुला या सक्रिय छन्ना सतह। जल में उपस्थित भौतिक अशुद्धियों को दूर करने के लिए सबसे आसान और कम खर्चीला फिल्टर जाली फिल्टर होता है जो उनके रूपों तथा आकारों में उपलब्ध है। जाली फिल्टर कार्ट्रिज फिल्टर के तरह ही कार्य करता है, फर्क सिर्फ इतना है कि ये उनसे बड़े प्रवाहों के लिए तथा अधिक ठोस पदार्थो का छानने के लिए उपयुक्त होता है। जब सतही जल का उपयोग दाबीय सिंचाई पद्धतियों में किया जाता है तब जाली फिल्टर को बालू फिल्टर के बाद द्वितीयक फिल्टर के रूप में उपयोग किया जात है परन्तु यदि जल में अत्यधिक अशुद्धियॉ नहीं हैं अथवा जल छानने की जरूरत अत्यधिक नहीं है तो वैसी परिस्थिति में सिर्फ जाली फिल्टर उपयुक्त

जाली फिल्टर

होता है। बाजार में अनेक प्रकार के जाली फिल्टर उपलब्ध है। कुछ निर्माणकर्त्ता फिल्टर में ऐसी व्यवस्था करते हैं कि पानी छानने की अवस्था में पानी फिल्टर आवरण में अन्दर से बाहर की तरफ जाय तथा कुछ निर्माणकर्त्ता इसके विपरीत पानी छनने की अवस्था में पानी को बाहर से अंदर की तरफ गुजारते है। जब सिंचाई जल में ठोस पदार्थ यथा बालू अथवा बड़े आकार के अकार्बनिक पदार्थ अशुद्धियाँ के रूप में मौजूद हों तो वैसी परिस्थिति में जाली फिल्टर का चयन करना चाहिए। ये फिल्टर कार्बनिक पदार्थ यथा एल्गी, मोल्ड, स्लाइम इत्यादि को छानने के लिए उपयुक्त नहीं होता है। जाली फिल्टर में प्रति वर्गमीटर खुला सतह से अधिकतम अनुशंसित प्रवाह दर 135 लीटर प्रति सेकण्ड से कम होना चाहिए। फिल्टर की जाली अनेकों मेश साईज (अर्थात छिद्र का आकार) में उपलब्ध है, सामान्यतः उपयोग होने वाले जाली का मेश साईज 140 से 200 (106 से 75 माइक्रोन) है जो बहुत ही छोटे आकार के बालू को छानने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। साफ फिल्टर में शीर्ष हानि 14 से 35 ईचं होता है। एक नियमित समय अन्तराल पर फिल्टर की सफाई करनी चाहिए। फिल्टर जाली को हाथ से अथवा स्वचालित तरीकों से साफ किया जाता है। फिल्टर जाली को फिल्टर आवरण से बाहर निकालकर हाथ से सफाई किया जाता है। फिल्टर के अन्दर प्रवाह की दिशा को उलट कर भी फिल्टर जाली की सफाई की जा सकती है।

चकती (डिस्क) फिल्टर

हाल के वर्षो में डिस्क फिल्टर परम्परागत जाली फिल्टर के विकल्प के रूप में आया है इसमें गोलाकार चकती का एक समूह होता है तथा दबाव में इस फिल्टर के डिस्क एक–दूसरे के साथ मिलकर एक नियंत्रित छिद्र बनाकर सिंचाई जल को छानते है। फिल्टर सफाई के दौरान डिस्क अलग हो जाते है तथा कण के सफाई को आसान बनाते है। ये फिल्टर ठोस तथा कार्बनिक दोनों प्रकार की अशुद्धियों को दूर करने में प्रयुक्त होता है। यह फिल्टर बालू के कम सान्द्रता वाले जल के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार यह फिल्टर बालू तथा जाली फिल्टर दोनों के कार्य को कुछ हद तक करते हैं।

चकती (डिस्क) फिल्टर

हाइड्रोसाइक्लोन फिल्टर

यह फिल्टर अपकेन्द्री बल के सिद्धात पर कार्य करता है तथा जल में उपस्थित ठोस अकार्बनिक पदार्थो को जल से पृथक करता है। इस फिल्टर का उपयोग निम्नलिखित विशिष्ट परिस्थितियों में किया जा सकता है।

हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर

1. जहॉ आगत जल तथा निर्गत जल के दाब के बीच अन्तर हो
2. जल तथा जल में स्थित ठोस पदार्थ के विशिष्ट घनत्व में अन्तर हो
3. जल का प्रवाह अशांत हो

इस फिल्टर का उपयोग वैसे जल के लिए उपयुक्त होता है जिसमें अशुद्धि के रूप में 74 माइक्रोन या उससे बड़े बालू के कण या निक्षेपण योग्य कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ विद्यमान होते हैं।

इस फिल्टर से अधिकतम दक्षता प्राप्त करने के लिए इनको संतुतित प्रवाह क्षेत्र में ही उपयोग करना चाहिए। इनके मॉडल का चुनाव प्रवाह दर के आधार पर किया जाना चाहिए तथा 35–70 KPa तक के शीर्ष हानि पर संचालित करना चाहिए। हाइड्रोसाईक्लोन फिल्टर का पृथक्करण दक्षता जल के प्रवाह दर, आगत तथा निर्गत जल के बीच दाबीय अन्तर, पृथक किये जाने वाले कण का आकार तथा फिल्टर की ज्यामितिक बनावट पर निर्भर करता है। यह देखा गया है कि (i) दाबीय अन्तर तथा प्रवाह दर जितना अधिक होता है, छोटे कणों को पृथक करने की दक्षता उतनी अधिक होती है (ii) कण का आकार तथा सान्द्रता अधिक रहने पर पृथक्करण दक्षता अधिक होता है। जहॉ अत्यधिक मात्रा में बालू या अन्य अशुद्धि होता है इसका प्रयोग बालू फिल्टर एवं जाली फिल्टर के पहले होता है।

मीडिया (बालू) फिल्टर

इस प्रकार के फिल्टर में जल को छोटे एवं तेज किनारा वाले कणों से भरे पात्र से गुजार कर साफ किया जाता है। विभिन्न प्रकार के कणिकीय संस्तर होते है जैसे – (अ) गहरा एवं एकसमान : नीचे की दिशा में बहाव एवं ऊपर की दिशा में सफाई (ब) असमान आकार के कण : ऊपर की दिशा में बहाव एवं नीचे की दिशा में सफाई (स) परतदार : नीचे की दिशा में बहाव एवं ऊपर की दिशा में सफाई (द) विभिन्न आकार के कणों के परत की श्रृखला। पूर्व में इस फिल्टर में एक ऊर्ध्वाधर टंकी में बालू एवं कंकड़ के विभिन्न परतों का उपयोग होता था परन्तु इन दिनों बालू के एक समान कण का उपयोग हो रहा है। प्रयुक्त बालू के कण का आकाार वांछित सफाई के स्तर पर निर्भर करता है। जहॉ बड़े आकार के बालू के कण का छानन दक्षता कम होता है जिसमें जल निस्सारित करने वाले यंत्र का छिद्र बन्द हो सकता है वहीं छोटे आकार के कण उपयोग करने पर फिल्टर को अनावश्यक जल्दी सफाई करनी पड़ सकती है। सफाई दक्षता फिल्टर द्वारा प्रवाह दर के व्युतक्रमानुपाती होता है अर्थात उच्चतर प्रवाह दर के लिए मीडिया फिल्टर की सफाई दक्षता कम होता है। आम संस्तुति यह है कि मीडिया फिल्टर में प्रयुक्त मीडिया पदार्थ के कण का आकार उतना होना चाहिए जो सिंचाई पद्धति के सबसे छोटे छिद्र के छठवें भाग से बड़े आकार के अशुद्धियों को छान सकें।

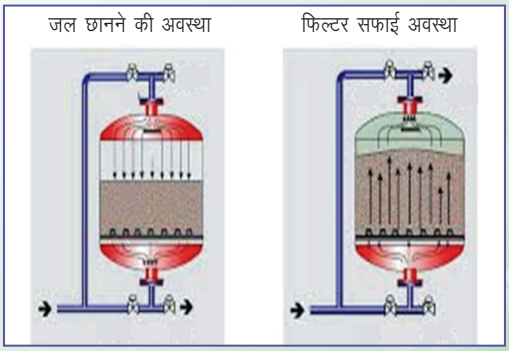

मीडिया (बालू) फिल्टर

प्रति वर्ग मीटर फिल्टर क्षेत्र द्वारा जल का प्रवाह दर 17 KPa से अधिक नहीं होना चाहिए। साफ स्थिति में बालू मीडिया फिल्टर में शीर्ष हानि 10.3 से 13.8 KPa होना चाहिए तथा जब शीर्ष हानि 41.4 KPa हो जाय तो फिल्टर की सफाई करनी चाहिए। आमतौर पर बालू मीडिया फिल्टर में अनुशंसित शीर्ष हानि अधिकतम 70 KPa है। फिल्टर की सफाई स्वचालित तरीके से एक निश्चित समय या शीर्ष अन्तर पर किया जा सकता है। वैसे जगह जहाँ अत्यधिक मात्रा में बहुत छोटे बालू के कण और कार्बनिक पदार्थ अशुद्धि के रूप में मौजूद रहते है, प्राथमिक फिल्टर के रूप में इस फिल्टर का प्रयोग किया जाता है। जिस जल में घुलनशील खनिज एवं कार्बनिक पदार्थ होते है वहां ये फिल्टर उपयुक्त नहीं होते है।

फिल्टर चुनाव हेतु अनुशंसा

सिंचाई जल के स्त्रोत के आधार पर निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं –

जल स्त्रोत	उपयुक्त फिल्टर
कुँआ	जाली फिल्टर या हाइड्रोसाइक्लोन फिल्टर या चकती फिल्टर
नदी	चकती फिल्टर या बालू फिल्टर + जाली फिल्टर या हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर + बालू फिल्टर
तालाब	चकती फिल्टर या बालू फिल्टर + जाली फिल्टर या हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर + बालू फिल्टर
ट्यूबवेल	जाली फिल्टर या हाइड्रोसाइक्लोन फिल्टर या चकती फिल्टर
कार्बनिक पदार्थ पदार्थ युक्त जल	चकती फिल्टर या बालू फिल्टर + जाली फिल्टर या हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर + बालू फिल्टर
बालू यूक्त जल	जाली फिल्टर या हाइड्रोसाइक्लोन फिल्टर या चकती फिल्टर

इस प्रकार दाबीय सिंचाई पद्धति में सही फिल्टर का चुनाव कर हम इसके रख–रखाव पर लागत खर्च कम करते हुए इस पद्धति का उचित सिंचाई दक्षता प्राप्त कर सकते है।

निष्कर्ष

दाबीय सिंचाई पद्धति के सुचारू रूप से कार्य करने हेतु सिंचाई जल का छानना जरूरी होता है। इस हेतु कई प्रकार के छन्ना पद्धति है यथा कार्ट्रिज फिल्टर, जाली फिल्टर, चकती फिल्टर, हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर तथा मीडिया (बालू) फिल्टर उपलब्ध है। जब सिंचाई जल में कठोर कण यथा बालू एवं बड़े आकार के अकार्बनिक पदार्थ अशुद्धि के रूप में हो तो जाली फिल्टर का उपयोग अनुशंसित है। जाली के आकार का चुनाव जल के वांछित शुद्धता पर निर्भर करता है। जब जल स्त्रोत नहर हो तो थिराव कुंड के साथ बालू फिल्टर या जाली फिल्टर या हाईड्रोसाइक्लोन फिल्टर अथवा बालू फिल्टर + जाली फिल्टर का उपयोग किया जा सकता है । तालाब या कुंड का जल बालू + जाली फिल्टर के द्वारा छाना जा सकता है। जब जल का स्रोत कम अशुद्धि की मात्रा वाला ट्यूबवेल हो तो उपयुक्त जाली फिल्टर का उपयोग कि या जा सकता है।

प्याज की खेतीः आर्थिक समृद्धि का आधार

सुनीता कुशवाह

कृषि विज्ञान केन्द्र, बाँका, बिहार

भूमिः– प्याज की खेती उन सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है जिसमें पानी निकास का अच्छा प्रबंध हो, परन्तु दोमट केवाल काली मिट्टी जो जैविक पदार्थों से परिपूर्ण हो उपयुक्त होती है।

बुवाई का समयः खरीफ प्याज के लिए बुवाई पूरे जून के महीने में की जाती है। रबी प्याज के लिए मैदानी भागों में प्याज की बुवाई मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक की जानी चाहिए। पहाड़ों पर बुआई मार्च–अप्रैल में भी की जा सकती है।

बीज की मात्राः एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए 7–8 किलो बीज पर्याप्त रहता है।

पौध तैयार करनाः बीज को ऊँची उठी हुई क्यारियों में बोया जाता है। क्यारियों की चौड़ाई 60 से 70 से0मी0 तथा लम्बाई सुविधानुसार रखते हैं। वैसे 3 मीटर लम्बी क्यारियां सुविधाजनक होती है। 10 ग्राम बीज प्रति वर्ग मीटर की दर से बुआई करनी चाहिये जिससे स्वस्थ पौध तैयार होगी। यदि रोग लगने की सम्भावना हो तो बीज तथा पौधशाला की मिट्टी को कवकनाशी जैसे थाइरम या कैप्टान आदि से उपचारित करना चाहिए। 2–3 ग्राम दवा प्रति किलो बीज के लिए पर्याप्त होती है। भूमि उपचारित करने के लिए 4–5

ग्राम दवा प्रति वर्ग मी0 भूमि के लिए आवश्यक है। पौध तैयार करने वाली मिट्टी को बुवाई से 15–20 दिन पहले पानी देकर सफेद पॉलिथीन से ढककर ''सोलाराईजेशन'' या बुआई के पहले ट्रायकोडर्मा विरिडी कवक से उपचारित करने से भी आर्द्रगलन कम होती है। खरीफ में 6–7 सप्ताह में तथा रबी में 8–9 सप्ताह में पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। बीज को 5–6 से0मी0 की दूरी पर कतारों में बोना चाहिए। बीज की बुवाई के बाद आधा से0मी0 तक सड़ी तथा छनी हुई गोबर की खाद और मिट्टी से बीज को पूर्णतया ढक देते हैं। इसके बाद फव्वारे से हल्की सिंचाई करके क्यारियों से सूखी घास हटाकर सिंचाई फव्वारे से करके पुनः क्यारियों को ढक दिया जाता है। पौधे को अधिक बरसात से बचाने के लिए सिरकी या नेट से ढकना प्याज के लिए उपयुक्त पाया गया है किन्तु खरीफ मौसम में जैसे ही बरसात खत्म हो सिरकी या नेट को हटा देना चाहिए क्योंकि यह देखा गया है कि अगर सिरकी या नेट

को हटाया नहीं जाता तो आर्द्रगलन बीमारी का आग्रमण अधिक तापक्रम एवं नमी होने से अधिक होता है। कभी–कभी तो 75 प्रतिशत पौधे मरते देखे गये हैं। पौधशाला में बायोअल्जीन एस 92 का 2 मि0ली0 प्रति लीटर की दर से छिड़काव करने से स्वस्थ पौध तैयार होती है। फव्वारा सिंचन के विधि से प्याज की पौध अच्छी तैयार कर सकते हैं।

पौध की रोपाई के लिए खेत की तैयारीः दो–तीन जुताईयाँ करके खेत की अच्छी प्रकार समतल बनाकर क्यारियों और नालियों में बाँट देते हैं। फिर 50 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर के हिसाब से क्यारियों में अच्छी तरह से मिला देते हैं। रोपाई के एक दिन पूर्व 200 किलोग्राम कैल्शियम अमोनियम नाईट्रेट या 100 कि0ग्रा0 यूरिया, 300 कि0ग्रा0 सिंगल सुपर फॉस्फेट, 100 कि0ग्रा0 म्यूरेट ऑफ पोटाश तथा 20–30 किलो बेंटोनाईट सल्फर, 10 से 12 किलो पी0एस0बी0 की प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलाकर क्यारियों को पुनः समतल बना देते हैं। करनाल (हरियाणा) क्षेत्र के लिए 150 कि0ग्रा0 यूरिया या 300 किलो किसान खाद, 500 किलो सिंगल सुपर फॉस्फट तथा रबी मौसम में 150 यूरिया या 300 कि0ग्रा0 किसान खाद, 250 कि0ग्रा0 सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 85 कि0ग्रा0 म्यूरेट ऑफ पोटाश सबसे उपयुक्त पाया गया है।

पौध की रोपाईः

खरीफ में रोपाई अगस्त के प्रथम पक्ष में करते हैं। रबी के लिए 15 दिसम्बर से 15 जनवरी उत्तम समय है। रोपाई करते समय कतारों की दूरी 15 जनवरी उत्तम समय है। रोपाई करते समय कतारों की दूरी 15 से0मी0 तथा कतार में पौधे की दूरी 10 से0मी0 रखते हैं। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना अत्यंत आवश्यक होता है, अन्यथा 100 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। खरीफ में प्याज की रोपाई के लिए ऊँची उठी क्यारियां बनानी चाहिए। रोपाई से पूर्व पौधों की जड़ों को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम + 0.1 प्रतिशत मोनोक्रोटोफॉस के घोल में डुबोकर लगाने से पौधे स्वस्थ रहते हैं।

उन्नत प्रजातियाँ

एग्रीफाउण्ड डार्क रेडः यह किस्म देश के विभिन्न प्याज उगाने वाले भागों में खरीफ मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त है। इस प्रजाति के शल्क कन्द गहरे लाल रंग के गोलाकार होते हैं, शल्के अच्छी प्रकार चिपकी होती है तथा मध्यम तीखापन होता है। फसल बुवाई से 140–145 दिनों में तैयार हो जाती है। पैदावार 200–275 कुन्तल प्रति हेक्टेयर तथा कुल विलेय ठोस 12–13 प्रतिशत तक होता है। यह प्रजाति राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित की गयी है। भारत सरकार ने इस किस्म को वर्ष 1988 में अधिसूचित किया है।

एग्रीफाउण्ड लाईट रेडः यह प्रजाति राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित की गयी है तथा पूसा रेड से बिल्कुल मिलती जुलती हैं। गाँठे मध्यम आकार की गोलाकार तथा हल्के लाल रंग की होती है। इसकी भण्डारण क्षमता अच्छी है। रोपाई के 120–125 दिन बाद तैयार होती है। पैदावार 300–325 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। यह प्रजाति भारत सरकार द्वारा वर्ष 1996 में अधिसूचित की गयी।

एनएचआरडीएफ रेड–2 (लाई–355): यह प्रजाति राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान द्वारा विकसित की गयी है। पौधे की उंचाई 55–64 से0मी0 तथा पत्तियों की संख्या 9–11 तक पत्तियाँ सीधी एवं हरी होती है। शल्क कन्दों का रंग लाल, ग्लोबला तथा आकर्षक होता है। कन्द का व्यास 5–6 से.मी. कुल विलेय ठोस (टी0एस0एस0) 13–14 प्रतिशत एवं 100–120 दिन में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। पैदावार 300–400 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है। यह प्रजाति प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशनालय द्वारा हरियाणा, पंजाब, बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, गुजरात, महाराष्ट्र, कनार्टक तथा आन्ध्रप्रदेश में उगाने के लिये संस्तुत की गयी है।

एनबचआरडीएफ रेड (लाइन–28): यह प्रजाति राष्ट्रीय बागवान अनुसन्धान एवं विकास प्रतिष्ठान के क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र करनाल (हरियाणा) से विकसित की गयी है। इस प्रजाति का चुनाव पंजाब प्रान्त के पटियाला क्षेत्र से किया गया है। पत्तियाँ गहरे हरे रंग की, सीधी व हल्की वैक्सी परत लिए हुए होती है। गाँठे ग्लोब आकार, गहरे लाल रंग की होती है। गाँठों का उपरी छिलका मोटा व 2–3 परत लाल रंग लिए हुए होता है। स्वाद मध्यम तीखा तथा टी0एस0एस0 13 से 14 प्रतिशत तक होता है। यह उत्तर, मध्य पश्चिमी भारत के लिए रबी मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त पायी गयी है। यह प्रजाति भारत सरकार द्वारा वर्ष 2007 में अधिसूचित की गयी है।

एग्रीफाउण्ड व्हाईट:

मध्य प्रदेश के निमाड क्षेत्र में रबी मौसम में उगाई जाने वाली स्थानिक किस्म के चयन विधि द्वारा इस प्रजाति का विकास राष्ट्रीय बागवान अनुसन्धान एवं विकास प्रतिष्ठान, नासिक ने किया है। शल्क कंदों का रंग आकर्षक सफेद, गोलाकार एवं बाह्यशल्क मजबूती से जुड़े हुये तथा व्यास 4–5 से0मी0 होता है। कुल विलेय ठोस 14–15 प्रतिशत होता है। भंडारण क्षमता मध्यम होती है। फसल बुआई से 160–165 दिनों में तैयार हो जाती है। औसत उत्पादन 200–250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होता है। यह प्रजाति रबी मौसम में उगाने के लिए उपयुक्त हैं एवं निर्जलीकरण के लिए बहुत उपयुक्त हैं।

फसल की देखभाल:

प्याज के पौधों की जड़े अपेक्षाकृत कम गहराई तक जाती है। अतः अधिक गहराई तक गुड़ाई नहीं करनी चाहिए। अच्छी फसल के लिए 2–3 बार शुरू में खरपतवार निकालना आवश्यक होता है। खरपतवार नाशक दवा का भी प्रयोग किया जा सकता है। गोल 1 लीटर या स्टॉम्प 3.5 लीटर प्रति हेक्टेयर रोपाई के तीन दिन बाद या रोपाई के ठीक पहले 800 लीटर पानी में डालकर छिड़काव करने से खरपतवार खत्म करने में मद्द मिलती है। खरपतवार नाशक दवा डालने पर भी 40–45 दिनों के बाद एक बार खरपतवार हाथ से निकालना आवश्यक होता है। सिंचाई समय पर आवश्यकतानुसार करते हैं। जाड़ों में सिंचाई लगभग 8–10 दिनों के अन्तर पर करते हैं परन्तु गर्मी में प्रति सप्ताह सिंचाई आवश्यक होती है। जिस समय गाँठें बढ़ रही है उस समय सिंचाई जल्दी करते हैं। पानी की कमी के कारण गांठे अच्छी तरह से नहीं बढ पाती है और इस तरह से पैदावार में कमी हो जाती है। प्याज की फसल ड्रीप सिंचाई तथा स्प्रिंकलर सिंचाई से भी अच्छी तरह ली जाती है।

खड़ी फसल में खाद देना (टॉपड्रेसिंग):

रोपाई के चार सप्ताह बाद लगभग 200 किलो किसान खाद या 100 किलो यूरिया प्रति हेक्टेयर की दर से छिटकवां विधि से मिला देते हैं। यदि किसान खाद का प्रयोग किया जाता है तो खाद डालने के बाद सिंचाई करना चाहिए परन्तु यूरिया सिंचाई के बाद देते हैं। यूरिया डालने से पहले खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। 150 किलो यूरिया या 300 किलो किसान खाद करनाल क्षेत्र के लिए उपयुक्त पायी गयी है। यदि जमीन हल्की किस्म की है तो उपरोक्त खाद की मात्रा दो भागों में रोपाई के 30 और 45 दिन के अन्तर पर देना चाहिए। रोपाई के 15 और 45 दिन बाद 0.2% बायोअल्जीन एस 92 या 0.2% सायटोजाईम का प्रयोग उपयुक्त पाया गया है। पैदावार बढ़ाने के लिए जस्त, ताम्र और बोरोन जैसे सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग भी उपयुक्त होता है। प्याज में अच्छी पैदावार के लिए गंधक देना चाहिए। खाद देते समय 30–50 किलो प्रति हेक्टेयर गंधक या 15 दिन के अंतराल पर 3–4 बार 1% गंधक का छिड़काव करना चाहिए।

पौध संरक्षण:

फसल को थ्रिप्स नामक कीड़े से बचाने के लिए डेल्टामेथ्रिन (0.4 मि0ली0 प्रति लीटर पानी में) या सायपरमेथ्रिन 10 इ0सी0 का (0.1%) छिड़काव करना चाहिए। छिड़कने वाले घोल में चिपकने वाले दवा जैसे सैण्डोविट 0.06% की दर से अवश्य मिलायें। साथ में नीमयुक्त कीटनाशकों का प्रयोग उपयुक्त होता है। पौध को आर्द्रगलन बीमारी से बचाने के लिए बीज को 0.2% थायरम से उपचारित कर लेना चाहिए। यदि बीमारी का प्रकोप बीज की बुआई के बाद आता है तो 0.2% थायरम के घोल से मिट्टी को नम कर देना चाहिए।

पर्पलब्लाच (बैंगनी धब्बा) तथा स्टेमफिलियम झुलसा रोग से बचाव के लिए मैन्कोजेब 2.50 ग्राम अथवा क्लोरोथेलोनील 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 10–15 दिनों के अन्तर पर छिड़काव करें। छिड़कने वाले घोल में चिपकने वाली दवा आवश्यक मिलायें। उपरोक्त कीट एवं बीमारियों में दोनों दवाएँ एक साथ मिलाकर छिड़क सकते हैं। प्याज खोदने के 10 दिन पूर्व छिड़काव बंद कर देना चाहिए। करनाल क्षेत्र (हरियाणा) में पाँच दिन खेत में सुखाने तथा पाँच दिनों तक छाया में सुखाकर टापसिन एम 0.1% थायरम तथा स्ट्रेप्टोसाईल्किन 0.02% थायरम के छिड़काव (गर्दन काटने के बाद) करने से भी भण्डारण की बीमारियों की रोकथाम करने में अच्छा परिणाम प्राप्त हुआ है। खुदाई से 10 व 20 दिन पहले 0.1% थायरम कार्बन्डेझिम का छिड़काव करने से भण्डारण में हानि कम होती है।

खुदाई एवं प्याज का सुखाना: खरीफ फसल को तैयार होने में बुआई से लगभग 5 माह लग जाते हैं। क्यों कि गांठे नवम्बर में तैयार होती हैं, जिस समय तापमान काफी कम होता है, पौधे पूरी तर से सूख

नहीं पाते इसलिए जैसे ही गांठे अपने पूरे आकार की हो जाय एवं उनका रंग लाल हो जाय, करीब 10 दिन खुदाई से पहले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। इससे गांठे सुडौल एवं ठोस हो जाती है तथा उनकी वृद्धि रूक जाती है है। जब गांठे अच्छी आकार की होने पर भी खुदाई नहीं की जाती तो वे फटना शुरू कर देती हैं। खुदाई करके इनको कतारों में रखकर सुखा देते हैं। पत्ती को गर्दन से 2.5 से0मी0 ऊपर से अलग कर देते हैं और फिर एक सप्ताह तक सुखा लेते हैं। सुखाते समय सड़े हुए, कटे हुए, दो–फाड़े, फूलों के डंठल वाली एवं अन्य खराब गांठे निकाल देते हैं।

रोपाई के 75–90 दिन बाद 2500 पी0पी0एम0 मैलिक हाईड्राजाइड रसायन का छिड़काव तथा खुदाई रो 10–15 दिनों पहले सिंचाई रोकने से भ्ण्डार में होने वाली क्षति कम होती है। भंडारण में सडन कम करने हेतू प्याज खुदाई से 20 से 10 दिन पहले 0.1% बावीस्टीन (कार्बांडेजिम) का स्प्रे करें। पत्तियों सहित धूप में सुखाने तथा सूखी पत्तियों सहित भण्डार में रखने से क्षति कम होती है। रबी फसल पकने पर जब प्याज की पत्तियाँ सूखकर गिरने लगें तो सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए और पन्द्रह दिन बाद खुदाई कर लें। आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने पर प्याज के कन्दों की भण्डारण क्षमता कम हो जाती है। यदि भूमि सख्त न हो तो गांठों को हाथों से भी उखाड़ा जा सकता है। 50% पत्तियाँ जमीन पर गिरने के एक सप्ताह बाद खुदाई करने से भण्डारण में होने वाली हानि कम होती है। प्याज के कन्दों को भण्डार में रखने से पहले सुखाने के लिए प्याज को छाया में जमीन पर फैला देते हैं। सुखाते समय कन्दों को सीधी धूप तथा वर्षा से बचाना चाहिए। सुखाने की अवधि मौसम पर निर्भर करती है। पौधे अच्छी तरह सुखाने के लिए 3 दिन खेत में तथा एक सप्ताह छाये में सुखाने के बाद 2–2.5 से0मी0 छोड़कर पत्तियाँ काटने से भण्डारण में हानि कम होती है। सुखाते समय कटे हुए, जुड़वा, पाईपोंवाली तथा मोटे गर्दन के कन्दों को अलग कर देते हैं क्योंकि ये भण्डारण में खराब हो जाती है। करनाल (हरियाणा) में बिन्डरो तरीके से सुखाने के बाद 10 दिनों तक छाया में सुखाकर 2.5 से0मी0 गर्दन छोड़कर पत्तियाँ काटकर भण्डारण करने से सबसे कम ज्याज सड़ी तथा भण्डारण से कम से कम कुल हानि पायी गयी।

उपजः खरीफ में 200–250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर औसत उपज हो जाती है तथा रबी में 300–350 कुन्तल प्रति हैक्टेयर प्याज कन्दों की पैदावार हो जाती है।

प्रमुख शूकर रोगों की पहचान, उपचार, बचाव एवं नियंत्रण

डा. एस. के. मंडल एवं डा. नीतिका शर्मा

भाकृअनुप–अटारी कोलकाता, प. ब.

शूकर पालन एक अत्यंत लाभदायक व्यवसाय है जो कम लागत व कम से कम समय में शूकर पालकों को अधिक से अधिक आर्थिक लाभ पहुंचाता है। शूकर पालन व्यवसाय को आर्थिक रूप से और भी अधिक लाभकारी बनाने के लिए आवश्यक है कि उन्नत नस्ल के शूकरों के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया जाए और उन्हें पौष्टिक व संतुलित आहार समुचित मात्रा में प्रदान किया जाए। शूकर रोगों को स्रोत के आधार पर मुख्य रूप से निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जाता है

(क) जीवाणु जनित रोग

(ख) विषाणु जनित रोग

(ग) परजीवी जनित रोग

(घ) पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोग

(ड) अन्य रोग व विकार

इन रोगों के लक्षण, उनसे होने वाली हानियां, रोग की पहचान, रोग के बचाव, रोग के उपचार तथा रोग के नियंत्रण का विवरण प्रस्तुत है।

मुख्य जीवाणु जनित रोग

पास्चुरेलोसिस

इस रोग को गलगोटू, घुर्रका अथवा घटसर्प भी कहा जाता है। यह रोग मुख्यतः गौपशुओं और भैंसों को प्रभावित करता है परन्तु यह शूकरों में भी पाया जाता है। जीवाणु जनित इस रोग का मुख्य कारक है पास्चुरेला मल्टोसिडा। यह रोग सभी उम्र के शूकर समूहों को प्रभावित करता है। यह रोग दूषित संक्रमणित आहार व पानी से होता है तथा रोगी पशु को तीन निम्नलिखित रूपों में प्रभावित करता है :–

(क) न्यूमोनिक पास्चुरोलोसिस– फेफड़ों में निमोनिया रोग अवगत होता है, प्शु को सांस लेने में अत्यंत कठिनाई का अनुभव होता है तथा कभी रोगी पशु मर भी जाता है।

(ख) सेप्टिसिमिक पास्चुरोलोसिस– यह रोग का अत्यंत खतरनाक रूप है जो आतों को प्रभावित करता है। रोगी पशु को दस्त लग जाते हैं तथा संक्रमण के 12 घंटों के अंदर ही पशु की मृत्यु हो जाती है।

(ग) मिश्रित रूप– दोनों प्रकार के लक्षण एक साथ रोगी पशु में पाए जाते हैं।

रोग के लक्षण– तीव्र ज्वर (105–108^0 फा.), नाक से पानी या गाढ़ा द्रव निकलना, मंह से पानी गिरना, क्षुधाहीनता, दुर्बलता, गले में सूजन, गर्भपात। कभी–कभी गर्दन, थूथन और पेट की खाल नीली पड़ जाती है। फेफड़े इस रोग में अत्याधिक प्रभावित होते हैं और शूकर रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

उपचार व बचाव– उपचार के लिए क्लोरटैट्रासाइक्लिन, आक्सीटेट्रासाइक्लिन अथवा सल्फा ड्रग लाभकारी है। बचाव के लिए बरसात से पहले शूकरों को सल्फामीजाथीन या टेरामाइसिन के इन्जेक्शन लगवाने चाहिए। बचाव के लिए एच.एस. के टीके 2–3 माह की आयु पर लगाए जाते हैं एवं 6 माह उपरांत फिर टीके लगवाएं। मानसून से पूर्व एच.एस. ओइल एडज्युवेन्ट वैक्सीन अथवा एच.एस. ब्राथ वैक्सीन 2–3 मि. ली. अतः त्वचा द्वारा दी जाती है। पेनीसिलिन व टेरामाइसिन इत्यादि एन्टीबायोटिक का उपचार प्रयोग किया जा सकता है। रोग की रोकथाम हेतु रोगग्रस्त पशु को अन्य पशुओं से अलग कर देना चाहिए क्योंकि यह एक अत्यंत संक्रामक रोग है। रोगग्रस्त पशु का खान–पान अलग से करना चाहिए। सूकर बाड़े को नियमित रूप से साफ करके फिनाइल व चूने का प्रयोग करना चाहिए।

ऐरिसिपेलेस रोग

इस रोग का कारक जीवाणु है ऐरिसिपिलोथ्रिक्स रूजियोपैथी। यह जीवाणु प्रायः शूकरों की आंतों में पाया जाता है। यह भूमि, गोबर, खाद इत्यादि में भी पाया जाता है। अत्याधिक ठंड, गर्मी, तनाव व थकान के कारण शूकरों की रोग प्रतिरोधक कम हो जाती है तथा इस रोग के फैलने की संभावनाऐं बढ़ जाती है। यह रोग बड़ी तीव्रता से फैलता है तथा देखते ही देखते पूरा का पूरा शूकर समूह इस रोग से ग्रसित हो जाता है। विषाक्तता तथा त्वचा ह्रदय व शरीर के जोड़ों के विकारर इस रोग की विशेषताएं हैं। इस सूक्ष्मजीवी का फैलाव आहार नाल द्वारा होता है। यह सूक्ष्म जीव मृदा, खाद्य पद्धार्थ तथा संक्रमणित प्राणियों के मल से संदूषित हो जाता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं – ज्वर (105^0 फा.), सुस्ती, शावकों में दस्त इत्यादि। यदि पशु जीवित रहता है तो उनके पूरे शरीर की त्वचा पर छोटे–छोटे, अलग–अलग तथा गुलाबी रंग के चकत्ते दिखाई देते हैं। चिरकारी रूप अथवा रोग के प्रकार में पशुओं की त्वचा में पित्ती जैसी क्षतियां होती हैं जो परिगलित अथवा मृतोत्तक होती हैं। पशु के कान के किनारे, पूंछ और पैरों के खुर नष्ट होकर गिर जाते हैं। शरीर के जोड़ों में सूजन आ जाती है तथा पशु लगड़ाकर चलता है। जीवित शूकरों में ह्रदय अपर्याप्ता के लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोग का उपचार पेनिसिलिन, टेरामाइसिनन तथा एण्टीऐरिसिपिलस सीरम द्वारा किया जाता है। रोग निरोध हेतु पशु गृहों में स्वच्छता का उचित व्यवस्था करनी चाहिए। पशुशाला की सफाई के लिए तीव्र विसंक्रामकों का प्रयोग करना चाहिए। रोगी जीवित शूकर अन्य पशुओं में रोग फैला सकते हैं अतः उन्हें दूसरे पशु गृहों में भेज देना चाहिए तथा स्वस्थ शूकरों से अलग कर देना चाहिए। एण्टीऐरिसिपिलस सीरम और वैक्सीनेशन विधि का साथ–साथ उपयोग किया जाता है। मृत जीवाणु से उत्पादित वैक्सीन का टीका लगवाया जाता है अथवा उसे मुंह से पिलाया जाता है। प्रथम टीका 6–10 सप्ताह की आयु पर, दूसरा टीका 2–3 सप्ताह के अंतराल पर लगाना चाहिए। वैक्सीन 1 मि.ली. मात्रा में त्वचा के नीचे एवं 2 मि.ली. मात्रा में मुंह द्वारा देना चाहिए।

प्रमुख विषाणु जनित रोग

खुरपका मंहपका रोग (एफ.एम.डी.):

खुरपका मुंहपका रोग पशुओं का एक भयानक संक्रामक रोग है। यह रोग विभाजित खुर वाले पशुओं का रोग है। यह मुख्यतः गोपशुओं का रोग है जो शूकरों में भी पाया जाता है। जंगली पशु पक्षी इस रोग को फैलाने में मद्द करते हैं। यह विषाणु मुंह, जीभ खुरों के आस–पास की त्वचा को प्रभावित करता है। संक्रामण के स्थान पर छाला या फुटिका बन जाती है। रोगी पशु ज्वर से पीड़ित होता है। पशु को भूख नहीं लगती तथा रोगी पशु को बहुत प्यास लगती है। मुंह और पैर में छाले दिखाई देते हैं। पशु लंगड़ा के चलने लगता है। पशु अपने पैरों के बीच के भाग को चाटता रहता है एवं पशु के मुंह से लार टपकती रहती है। विदेशी तथा संकर नस्ल खुरपका मुंहपका रोग से अधिक प्रभावित होते हैं। गर्भवती शूकरियों के शावक या तो मर जाते हैं अथवा गर्भपात हो जाता है।

खुरपका मुंहपका रोग से शूकरों में मृत्युदर 5–10 प्रतिशत है तथा शावकों में मृत्युदर अपेक्षाकृत वयस्क शूकरों से अधिक है।

खुरपका मुंहपका रोग का कोई प्रभावशाली उपचार नहीं है। इस रोग के नियंत्रण हेतु स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए। रोगी पशु के मुंह को 2 प्रतिशत फिटकरी के घोल अथवा 0.1 प्रतिशत पोटेशियम परमैग्नेट के घोल से धोना चाहिए। इसके अतिरिक्त सुहागा और शहद को एक और सात के अनुपात में मिलाकरर जीभ के छालों पर लगाने से पशुओं को दर्द में बहुत राहत मिलती है और घाव शीघ्र भर जाते हैं। पैरों को एक प्रतिशत नीले थोथे (तूतिया) के घोल से धोना चाहिए। रोगी पशुओं के आवास में पुवाल अथवा भूसे का बिछावन एवं रूचिपूर्ण भोजन देना चाहिए। यह एक अत्यंत संक्रामक रोग है अतः रोगी पशुओं और स्वस्थ पशुओं में दूरी रखनी चाहिए ताकि रोग फार्म के स्वस्थ पशुओं को प्रभावित न कर सके। पशुओं को समय–समय पर खुरपका मुंहपका रोग के टीके लगवाकर इस रोग से बचाया जा सकता है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए पोलीवैलेन्ट ए.एम.डी. वैक्सीन जन्म के एक माह के अंदर लगा देना चाहिए। दूसरा टीका अथवा वैक्सीन का बूस्टर एक माह पश्चात् लगाना चाहिए। तत्पश्चात् हर 6 माह यह वैक्सीन लगवाते रहना चाहिए। शूकरों के बाड़े के बाहर चूना छिड़का देना चाहिए अथवा बोररी को 2–4 प्रतिशत फार्मेलिन के घोल में भिगोकर पशुओं के बाड़े के बाहर बिछा देना चाहिए अथवा उपरोक्त घोल को 1–2 इंच गहराई तक प्रवेश द्वार के बाहर ड़ाल दें ताकि बाहर से आने वाले मनुष्यों से यह संक्रमण फार्म के पशुओं तक फैलने की संभावना को कम किया जा सके।

इस रोग के लक्षणों में शीघ्र सुधार हेतु लक्षणों के अनुसार रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली दवाऐं एंटी–हिस्टामिनिक तथा एंटी–इन्फ्लेमेटरी औषधियों का प्रयोग करें। रोगी पशु को खाने के लिए चावल की मांड, गेहुं का दलिया, गुड़ इत्यादि देना लाभप्रद है।

शूकर ज्वर

शूकर ज्वर विषाणुओं द्वारा होने वाला एक अत्यंत संक्रामक रोग है जो केवल शूकरों में ही पाया जाता है। यह रोग अधिकतः गर्मियों में शूकरों को प्रभावित करता है। सभी उम्र वर्गों के शूकरों में विषाणु प्रविष्ट होने के 2–10 दिनों के भीतर इस रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इस रोग के दो रूप हैं–

(क) चिरकालिक रूप

(ख) अचिरकालिक रूप

चिरकालिक रूप में विषाणु संक्रमण के 5–10 दिनों के भीतर रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं–शावकों की बिना किसी लक्षण के मृत्यु, उदासीनता, क्षुधाहीनता, शूकर का सिर व पूंछ को नीचे कर के शांत खड़े रहना, चलने फिरने में कोई रूचि न लेना, जबरदस्ती चलाने का प्रयत्न करने पर पशु के पिछले हिस्से का झूमना, शूकरों का एक के ऊपर एकत्रित होना तीव्र ज्वर इत्यादि। इसके अतिरिक्त कब्ज के पश्चात दस्त तथा उल्टी होना, शरीर की त्वचा का नीला पड़ना, आंखे लाल होना, सूजन इत्यादि भी शूकर ज्वर के लक्षण हैं। तंत्रीय लक्षणों में शूकर गोलाइ में घूमना, लड़खड़ाना, मांसपेशियों में झटके आना प्रमुख है। इस रोग का दूसरा रूप अचिरकालिक रूप बहुत कम शूकरों में पाया जाता है, मुख्यतः यह रूप वयस्क शूकरों को प्रभावित करता है। इसके प्रमुख लक्षण है– दुर्बलता, त्वचा में विशेष प्रकार की विकृति पाया जाना, बाल गिरना, त्वचा शोथ, कान पर चकत्ता बनना और शरीर की त्वचा का गहरा नीला पड़ना इत्यादि। कभी–कभी रोगी शूकर स्वतः ठीक हो जाते हैं।

शूकर ज्वर से बचाव हेतु 75–90 दिन की आयु पर इस बीमारी का वैक्सीन लगवाना चाहिए तथा तत्पश्चात् एक वर्ष के अंतराल पर पुनः टीका लगवाना चाहिए। शूकर गृह को 5 प्रतिशत फिनायल तथा 17 प्रतिशत हाइपोक्लोराइट घोल से धोना चाहिए। रोगी पशु को अन्य पशुओं से शीघ्र अलग कर देना चाहिए। रोग के उपचार हेतु क्षय सीरा अविलम्ब 50 मि.ली. तक दिया जा सकता है। इस रोग का कोई प्रभावी उपचार नहीं है। रोग के नियंत्रण हेतु शूकर आवास को स्वच्छ रखना चाहिए तथा शूकरों के लिए साफ पानी व भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। शूकर ज्वर लेपिनाइज्ड़ वैक्सीन शूकरों को लगवाते रहना चाहिए।

शूकर ज्वर के लक्षण प्रकट होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। जिस शूकर फार्म में शूकर ज्वर फैला हो वहां से मांस व शूकर नहीं खरीदने चाहिए। रोगी शूकरों के मल–मूत्र को जमीन में दबा देना चाहिए। उचित तो यही है कि रोगी पशु को मार कर उसे जला दें अथवा जमीन में दबा दें परंतु भारत जैसे विकासशील देश में ऐसा करना पशुपालकों के लिए संभव नहीं है।

शूकर चेचक

शूकर चेचक एक विषाणु जनित रोग है जो दो विषाणुओं वैक्सिनिया व स्वाइन पाक्स नामक विषाणुओं के संक्रमण से होता। स्वाइन पाक्स रोग रोग को शूकर शीतलता के नाम से भी जाना जाता है। शूकरों में परजीवी जैसे जूं और किल्लनियों द्वारा यह रोग फैलता है। शूकर की जूं हिमोफिलस सूइस

द्वारा यह रोग फैलता है। ज्वर, सुस्ती, शरीर के नीचले भाग में लाल दाने निकलना शूकर चेचक के लक्षण हैं। शूकर चेचक के लाल रंग के दाने कुछ समय पश्चात् काला व भूरा रंग ले लेते हैं। शूकर चेचक के दाने मुख्यतः कान, चेहरे, गर्दन की त्वचा को प्रभावित करते हैं। शूकर चेचक के कारण शूकर दुर्बल हो जाते हैं। इस रोग में मृत्यु होने की संभावनाएं कम ही रहती हैं और दो सप्ताह के अंदर पशु स्वतः ठीक हो जाता है। उपचार हेतु शूकर चेचक से प्रभावित त्वचा तथा उत्पन्न दानों पर एण्टीसेप्टिक मलहम का प्रयोग करना चाहिए।

जापानी मस्तिश्क शोथ

जापानी मस्तिष्क शोथ अथवा जैपनीस इन्सेफलाइटिस मुख्यतः मनुष्यों का रोग है जिसका संक्रमण स्रोत पशु होते है। यह रोग विषाणु जनित है। इस रोग का विषाणु तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है। भारत में शूकर, गौ–पशु, घोड़े, जंगली पक्षी इसका संक्रमण स्त्रोत हैं। इस रोग का संक्रमण मच्छर के काटने से फैलता है। अचानक तीव्र ज्वर, शरीर में अकड़न, उल्टी, मदहोशी, झटका आना, बेहोशी इसके मुख्य लक्षण हैं। इस रोग की पहचान सरलता से नहीं हो पाती अतः रोगी व्यर्थ ही वेधना झेलते हैं। यह रोग शूकर शावकों के प्राणों के लिए घातक होती है। मादा मच्छर शूकर के रक्त से रोग के विषाणु लेकर मनुष्यों को काटने के दौरान मनुष्यों तक जापानी मस्तिष्क शोथ के विषाणु व संक्रमण को पहुंचा देती है। अतः इस रोग की रोकथाम हेतु मच्छरों का नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। इस रोग के विरूद्ध वैक्सीन व प्रभावशाली उपचार अभी उपलब्ध नहीं है। शूकर पालकों को इस रोग से बचाव के लिए उचित उपाय करने चाहिए।

शूकर इनफ्लूऐंजा/शूकर फ्लू

शूकर इनफ्लूऐंजा एक विषाणु जनित रोग है। यह पशुओं से मनुष्यों को होने वाली एक घातक बीमारी है जिसमें 2010 के वर्ष में खतरनाक रूप लेकर पूरे विश्व में त्राहि मचा दी। यह रोग अचानक होता है और इसके लक्षण हैं–तीव्र ज्वर, नाक से पानी गिरना, आंखों में सूजन व आंखों का लाल होना। इस रोग के नियंत्रण हेतु कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

प्रधान परजीवी जनित रोग

एसकेरिस

एसकेरिस शूकरों का प्रमुख गोलकृमि है। एसकेरिस 15–25 से.मी. लम्बा होता है। इसका संक्रमण दूषित जल तथा भोजन जिसमें एसकेरिरस के छोटे अंडे होते हैं को ग्रहण करने से होता है। पाचन संस्थान में निवास करने वाली वयस्क मादा कृमि अनगिनत अंड़े देती है जो मल के साथ बाहर आ जाते हैं। अनुकूल वातावरण पाने पर इन अंडों के अंदर लारवा विकसित होकर संक्रमणित करने की क्षमता रखने वाली अवस्था में आ जाते हैं। यही अंडें पुनः आहार व पानी को दूषित कर अन्य पशुओं को संक्रमणित करने का माध्यम बनते हैं। एसकेरिस शूकरों की आंतों में पनपता है। मादा एसकेरिस आंतों में ही अण्ड दान करती है। आंतों में निवास करने वाले एसकेरिस शूकरों की आंत से पोषक तत्व ग्रहण करते है फलस्वरूप शूकर दुर्बल हो जाते हैं तथा उनका शारीरिक विकास एक सा जाता है। अधिक संख्या में एसकेरिस आंतों

में रूकावट उत्पन्न कर देते हैं। एसकेरिस अपने जीवन चक्र कुछ भाग शूकर के फेफड़ों में भी गुजारता है जिसके कारण फेफड़ों को क्षति पहुंचती है तथा खांसी व निमोनिया होने की संभावनाएं बढ़ जाती है। एसकेरिस का संक्रमण यकृत (लीवर) को प्रभावित करता है क्योंकि फेफड़ों के साथ–साथ यह कृमि यकृत में भी अपने जीवन चक्र का कुछ भाग गुजारता है। यकृत बेकार हो जाता है तथा आहारर को शूकरर उचित प्रकार पचा नहीं पाता फलस्वरूप मल पतला हो जाता है। शूकर शावक एसकेरिस संक्रमण को प्रायः सह नहीं पाते तथा उचित समय व उचित उपचार न करने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

इस गोलकृमि के संक्रमण को कम करने के लिए आवश्यक है कि पशु गृहों में सफाई की उचित व्यवस्था की जाए। शूकर आहार व पीने के जल में कृमि के अण्डें न हों। एसकेरिस युक्त शूकर के मल के निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए तथा शीघ्र अति शीघ्र उसे एन्थलमिन्टिक दवा देनी चाहिए। एसकेरिस नाशक दवा पारपराजीन, अल्बेन्डाजोल इत्यादि दवा शावक को एक माह पर तथा तत्पश्चात् एक–एक माह के अंतर पर देते रहना चाहिए। दवा के पाऊडर को भोजन अथवा पेय जल में मिला कर देना चाहिए। एसकेरिस तथा अन्य गोलकृमियों से ग्रसित शूकर को अन्य शूकरों से अलग करके उनका उचित उपचार करें। शूकर को 100–300 मि.ग्रा. पाइपराजीन साइट्रेट या पाइपराजीन एड़ीवेट दवा प्रतिकिलो शारीरिक भार के अनुसार प्रदान करें। पेरामिजाल, लेवामिजाल, फेनबेन्डाजोल इत्यादि दवाएं भी दी जा सकती है। एसकेरिस शूकर, शूकर शावकों के अतिरिक्त मनुष्यों को भी अपना शिकार बना सकता है। विशेषकरर बच्चे इसका शिकार बनते हैं अतः शूकर पालकों को एसकेरिस से शूकरों तथा मनुष्यों के बचाव के लिए एन्थेलमिन्टिक दवाओं का शूकरों समय–समय पर सेवन कराना चाहिए।

फीताकृमि

फीताकृमि फीते जैसे लम्बे और चपटे होते है और ये मुख्यतः आंतों में पाए जाते हैं। फीताकृमि शूकर स्वास्थ्य को अधिक हानि नहीं पहुंचाते परंतु रक्त कोशिकाओं में पाए जाने वाले फीताकृमि आंतों व यकृत में विकार उत्पन्न करते हैं। फीता कृमि सिस्टोड के नाम से भी जाने जाते हैं। फीताकृमि तथा उनकी अवस्थाएं विभिनन पशु प्रजातियों जैसे–गौ पशुओं, शूकर, भेड़, कुत्ते के अतिरिक्त मनुष्यों में भी पाई जाती हैं। शूकरों में टीनिया सोलियम नामक फीताकृमि की मैटासिस्टोड अवस्था सिस्टीसर्कस सेल्युलोसी पाई जाती है। शूकर के संक्रमति मांस को खाने से मनुष्य में यह फीताकृमि उत्पन्न हो जाते हैं। ये फीताकृमि शूकर मांस में छोटे–छोटे सफेद दानों के रूप में दिखाई देता है। मैटासिस्टोड 5 अवस्था विशेषकर हृदय, जीभ, जांघ आदि भागों में पाए जाते हैं। टीनिया सोलियम मैटासिस्टोड अवस्था से संक्रमति शूकर मांस मिजली पर्क कहलाता है। अतः शूकर मांस को खाने से पूर्व सावधानी बरतनी चाहिए तथा पर्क को भली भांती देर तक पकाने के पश्चात् ही उसका सेवन करना चाहिए। शुकर को इस फीताकृमि के संक्रमण से बचाने के लिए मानव मल ग्रहण नहीं करना चाहिए। सिस्टीसर्कस अवस्था का कोई उपचार नहीं है।

कुत्तों में पाया जाने वाला हाइडटिड फीता कृमि के लारवे भी शूकरों में पनपते हैं। यह लारवे मुख्यतः शूकर के यकृत, फेफड़े, गुर्दे में पनपते हैं। यह लारवा सरलता से शूकर मांस में पहचाना जा सकता है। यह लारवा पानी से भरे एक बड़े फोड़े की तरह दिखाई देता है। इस लारवे को शूकर मांस से अलग कर

जमीन में दबा देना चाहिए ताकि कुत्ते इसे न खा पाएं अन्यथा कुत्तों में इस फीताकृमि की वयस्क अवस्था का संक्रमण हो जाएगा।

पोशक तत्वों की कमी से होने वाले रोग

शूकर षावकों में रक्ताल्पता

पक्के फर्श वाले पशुगृहों में पाले जाने वाले शूकर शावकों में जन्मोपरान्त यदि लौह प्रदान करने का उचित प्रबंध न हो तो उनमें रक्ताल्पता होने की संभावना प्रबल हो जाती है। प्रायः विचरणी व्यवस्था में पाले जाने वाली शूकरियों के शावकों में रक्ताल्पता की संभावनाएं कम रहती हैं क्योंकि ऐसी शूकरियां मिट्टी के संपर्क में रहती हैं। शूकर शावकों में रक्ताल्पता का कारण है लौह (आयरन) हीनता। शरीर के अन्य न्यून खनिजों की अपेक्षा लौह की मात्रा और आवश्यकता दोनों ही अधिक होती है। हीमोग्लोबिन और मायोग्लोबिन में लौह अनिवार्य घटक है। शरीर में उपस्थित लौह का लगभग 60 प्रतिशत भाग हीमोग्लोबिन में पाया जाता है। लौह की कमी के कारण शरीर में हीमोग्लोबिन नहीं बन पाता जिसके फलस्वरूप रक्ताल्पता हो जाती है। मादा शूकर के दूध में लौह बहुत कम मात्रा में पाया जाता है जो शीघ्र बढ़ने वाले शूकर शावकों के लिए समुचित नहीं होता। यही कारण है कि शूकर शावक बाल्यावस्था में रक्ताल्पता के शिकार होते हैं। कभी–कभी ताम्र की हीनता भी रक्ताल्पता का कारण बनती है क्योंकि ताम्र लौह अवशोषण के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त लौह हीमोप्रोटीन इन्जाइमों और फ्लेवोप्रोटीन उत्प्रेरक में सक्रिय रूप से कार्य करता है। अतः लौह हीनता शावकों के शरीर के विकास और वर्धन को विशेष रूप से प्रभावित करती है। शूकर शावकों में रक्ताल्पता के लक्षण 2 से 4 सप्ताह के अंदर उत्पन्न हो जाते हैं। रक्ताल्पता के लक्षण हैं–भूख में कमी, दुर्बलता, सांस लेने में कठिनाई, शारीरिक विकृतियां, अकाल मृत्यु इत्यादि। रक्ताल्पता से प्रभावित शावकों की विकास दर घट जाती है तथा यदि समय रहते लौह की आहार में कमी को पूरा न किया जाए तो अधिकांश शावक अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

षावकों में रक्ताल्पता का उपचार

गाभिन शूकरियों को गर्भकाल के अंतिम सप्ताह में प्रसव बाड़े में स्थानांतरित कर दिया जाता है। इस अवधि में पशु आहार में लवणों की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। प्रसव के उपरांत शूकरियों के थनों में पशु विशेषज्ञों की सलाह के अनुसार फेरस सल्फेट (हरा थोथा) और कोपर सल्फेट (नीला थोथा) से मिश्रित शीरे का हल्का लेप लगा देना चाहिए जिसके फलस्वरूप स्तनपान के समय शावक यह लेप चाट कर लौह व ताम्र प्राप्त कर सकें। हरे थोथे (फेरस सल्फेट) को ग्लिसरीन में पशु पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार मिलाकर तैयार पेस्ट को 1–2 बूंद शावक को चाटना चाहिए। एनीमिया या रक्ताल्पता का उपचार करने के लिए फेरस सल्फेट 150 ग्राम तथा कोपर सल्फेट 100 ग्राम को 1 किलोग्राम शीरे में मिला कर मादाओं के थनों पर लेप के रूप में लगाना चाहिए।

विटामिन बी की कमी

विटामिन बी–1, बी–2, बी–6 तथा बी–12 की कमी से शारीरिक विकास की दर कम हो जाती है।

विटामिन बी की कमी से अतः पाचन संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विटामिन बी की पशु में आपूर्ति अत्यंत आवश्यक है अन्यथा शूकर उत्पादन पुर्नरूत्पादन तथा स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है।

शावकों में दस्त

शूकर शावक 15–20 दिन से दूध के साथ–साथ थोड़ा अनाज भी आहार के रूप में लेना शुरू कर देते हैं। ऐसी स्थिति में आहार को उचित प्रकार से न पचाने के कारण अथवा साल्मोनेला ई कोलाई जीवाणु के संक्रमण के कारण शावकों में दस्त की रोकथाम हेतु उन्हें विशेष संतुलित आहार जिसे क्रीप राशन कहा जाता है देना चाहिए। आवश्यकतानुसार एंटीबायोटिक, सल्फा दवाओं, फ्यूरोक्जोन जैसी कारक जीवाणु को नष्ट करने वाली दवाइयों का तथा साथ में दस्त बंद करने वाली औषधियों का प्रयोग भी करना चाहिए। शरीर में दस्त के कारण जिन लवणों की कमी हो जाती है उन लवणों की पूर्ति के लिए जीवन रक्षक घोल पिलाना चाहिए। यदि जीवन रक्षक घोल के पैकेट उपलब्ध न हो तो ग्लूकोज 5 ग्राम, नमक 2 ग्राम, पोटेशियम क्लोराइउ 2 ग्राम को पानी में घोल कर जीवन रक्षक घोल बनाया जा सकता है। जीवन रक्षक घोल 100 मि.ली. प्रति दस्त से ग्रसित शावक को दिन में 2–4 बार आवश्यकतानुसार पिलाना चाहिए ताकि निर्जलीकरण की रोकथाम की जा सके।

तुरन्त ब्याई मादाओं में दूध का न उतरना कभी–कभी ऐसी स्थिति भी उत्पन्न होती है कि प्रसव के तुरंत बाद मादा शूकरों के थनों से दूध नहीं निकलता है। इसके लिए तुरंत हारमोन चिकित्सा (आक्सीटोसिन) द्वारा करनी चाहिए अन्यथा शावक भूख से बिलक जाएंगे और उनके भावी शारीरिक विकास पर भी प्रभाव पड़ेगा। हारमोन चिकित्सा के अतिरिक्त आवश्यकता है कि शूकरियों को पौष्टिक आहार दिया जाए, दूध की मात्रा में वृद्धि हेतु दूध की मात्रा बढ़ाने वाली औषद्वियों उदाहरणतः कैल्सियम बोरोग्लूकोनेट इत्यादि दिया जाए। यह उपचार 10–15 दिन तक करते रहना चाहिए।

एक लीडर आशा का व्यापारी होता है।

– नेपोलियन बोनापार्ट

नालन्दा जिला में ''जैविक खेती'' के माध्यम से कृषको में सशक्तीकरण

डा0 संजीव कुमार, डा0 उमेश नारायण, डा0 बी0 के0 सिंह एवं
श्री एन0 के0 सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, नालदां, बिहार

वर्तमान कृषि पद्धति मे सुधार लाने के उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई0सी0ए0आर0), नई दिल्ली, द्वारा नालन्दा जिले के हरनौत प्रखण्ड मे राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पुसा समस्तीपुर, के प्रशासनिक नियंत्रण मे कृषि विज्ञान केन्द्र, हरनौत (नालन्दा) 1 अगस्त 1992 मे स्थापित किया गया।

नालन्दा जिला के विभिन्न गाँवों जैसे सोहडीह, आशानगर, बबुरवरना, सरदारबिगहा, प्रेमनबिगहा, जुनैदी, इत्यादि में बड़े पैमाने पर विभिन्न फसलों की खेती खासकर, सब्जी की खेती होते आ रही थी। उपरोक्त विभिन्न गाँवो में रासायनिक खाद, कीटनाशी एवं फफुँदनाशी इत्यादि का प्रयोग बड़े पैमाने पर करते आ रहे थे। जिसके चलते न केवल सब्जी के लागत मुल्य बढ़ता जा रहा था, बल्कि सब्जी की गुणवता के साथ साथ विपणन मे भी समस्या हो रही थी। जिसके कारण किसानों को सब्जी की खेती से लाभ घटते जा रहा था। वर्श 2003 में राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय के कीट विभाग मे आई0 सी0 ए0 आर0, नई दिल्ली द्वारा संपोशित् नेटवर्क प्रोजेक्ट पेस्टीसाइड अवशेष जांच प्रयोगशाला में नालन्दा जिला के सोहडीह, आषानगर, रामडीहा, एवं सोहसराय के किसानो जैसे श्री अरूण कुमार, श्री अवधेश प्रसाद, श्री गिरीश प्रसाद, श्री जितन प्रसाद, श्री अजय कुमार, संर्तोष कुमार, श्री सुरेश कुमार, श्री धर्मेंद्र कुमार, श्री शिवकुमार, श्री अरविंद कुमार, इत्यादि के विभिन्न सब्जियों जैसे आलु, फुलगोभी, बैगन, मीर्च, भिंडी, कद्दु, इत्यादि सब्जी के नमुनों का जाँच कीट विभाग राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पुसा मे किया गया, जिसमे लगभग 64.75 प्रतिशत नमुनों में कीटनाशीकों के प्रभाव से प्रदुषित पाया गया तथा शेष नमुनों में इथियोन की मात्रा 3.416 से 5.064 मि0ली0 ग्रा0/किग्रा0 पाया गया, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनुशंसित मान्य स्तर से कई गुना ज्यादा थी। जो सब्जी उपभोक्ताओं के लिये भी अस्वस्थकर थीं। साथ ही साथ सब्जियों को केवल नजदीक के बाजार मे बेचा जाता था जिससे सब्जी उत्पादनों का लाभ सीमित था।

उपरोक्त समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, हरनौत, (नालंदा) के द्वारा सबसे पहले बिहारशरीफ के प्रखंड सोहडीह एवं आशानगर, के गाँवो को जैविक सब्जी उत्पादन के लिये चयन किया गया। इन दोनो गांवो के कृशको के लिये जैविक खेती से संबंधित विभिन्न तकनीकी पहलुओं पर जैसे बीजोपचार, समेकित पोशक तत्व प्रबंधन, समेकित कीट–व्याधी प्रबंधन, जैव उर्वरक, जैविक कीटनाशी, एवं फफुँदनाशी, के प्रयोग एवं लाभ के बारे में किसानों को विभिन्न कार्यक्रम जैसे प्रशिक्षण, अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण, किसान गोष्ठी, किसान चौपाल, एवं कृषि विभाग बिहार सरकार द्वारा चलाये गये प्रशिक्षण मे कृषि विज्ञान केन्द्र, हरनौत (नालन्दा) के वैज्ञानिकों ने सहयोग किया। इसके बाद सोहडीह में लगभग

265 किसानो को आत्मा, नालंदा के द्वारा ''शेरे बिहार फार्मस समुह'' के नाम से पंजीयन कराया गया, जिसमें कृ0 वि0 के0, नालंदा के द्वारा समुह के किसानो को जैविक खेती के विभिन्न पहलुओं की वज्ञैानिक जानकारी दी गई।

''शेरे बिहार फार्मस समुह'' से जुड़ें कृषकों के समुह को कृ0 वि0 के0, नालंदा द्वारा किसानों को वर्मी कंपोस्ट के उत्पादन एवं प्रयोग का विस्तृत प्रशिक्षण दिया गया। साथ ही साथ कृषि विभाग, बिहार सरकार के द्वारा अनुदानित दर पर वर्मी कंपोस्ट इकाई का निमार्ण समुह से जुड़े कृषको को उपलब्ध कराया गया तथा खेती मे इसका भरपुर उपयोग किया गया और लगभग 320 वर्मी कंपोस्ट इकाई लगाया गया। जिससे वार्षिक उत्पादन लगभग 2500 टन प्रतिवर्ष प्राप्त कर खेतों में उपयोग किया गया। जिसके कारण न केवल सब्जी की गुणवता मे सुधार होने के साथ साथ सब्जी की सुरक्षा अवधि मे भी सुधार हुआ। समुह से जुड़े किसानों के खेतों की मिट्टी की उर्वरता का स्तर जानने के उद्देष्य से कृषि विज्ञान केन्द्र, हरनौत (नालंदा) द्वारा वर्श 2013 में सोहडीह और आषानगर, गाँवो का मिट्टी के नमुने की जांच किया गया। जिसमे आर्गेनिक कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, इत्यादि की मात्रा क्रमशः 0.63 प्रतिशत, 328 किग्रा0/हे0, 42.6 किग्रा0/हे0, और 317 किग्रा0/हे0, जबकि 2010–11 में आर्गेनिक कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश इत्यादि की मात्रा क्रमशः 0.591 प्रतिशत, 315 किग्रा/हे0, 38.9 किग्रा0/हे0, 305 किग्रा0/हे0, थी।

मिट्टी की औसत उर्वरता का स्तर

क्रम सं0	विवरण	जैविक कार्बन (प्रतिशत में)	उपलब्ध नेत्रजन (किग्रा0/हे0)	उपलब्ध स्फूर (किग्रा0/हे0)	उपलब्ध पोटाश (किग्रा0/हे0)
1.	मृदा स्तर (2010–11)	0.591	315.0	38.9	305.0
2.	मृदा स्तर (2013–14)	0.636	328.0	42.6	317.0

''शेरे बिहार फामर्स समुह'' से जुड़े कृषकों को कृषि विज्ञान केंद्र, नालंदा एवं कृषि विभाग, नालंदा के सहयोग से जैविक प्रमाणीकरण एजेंसी ECOCERT के द्वारा जैविक खेती का प्रमाणीकरण स्तर सी0–3 के रूप मे वर्ष 2013 में दिया गया जो जैविक उत्पाद को जैविक रूप से प्रमाणित करता है। इस प्रकार ग्राम

सोहडीह, एवं आशानगर के किसान न केवल अपने जिले बल्कि राज्य के बाहर भी जैविक सब्जी उत्पादन के लिये प्रेरणास्रोत बने हुए है। जैविक खेती से जुड़े (''शेरे बिहार फामर्स समुह'') के किसानों का सब्जी उत्पादों जैसे आलु, फुलगोभी, प्याज, करैला, कद्दु इत्यादि का औसत उत्पादकता एवं सापेक्षिक लाभ / हे0 नीचे वर्णित हैं।

क्रम सं0	जैविक सब्जी के प्रकार	किसानों की सं0	क्षेत्रफल (हे0 में)	औसत उत्पादन (क्वि0 / हे0)	सापेक्षिक लाभ (रू / हे0 में)
1ण	आलु	265	200	480	32000
2ण	फुलगोभी	265	105	640	160000
3ण	प्याज	265	120	576	180000
4ण	करैला	265	40	640	192000
5ण	कद्दु	265	40	950	189000

ECOCERT एजेंसी से जैविक उत्पादो का प्रमाणीकरण के उपरांत, उपरोक्त समुह के किसान न केवल राज्य के अंदर विभिन्न सब्जियो की मांग बढ़ी है, बल्कि राज्य के बाहर महाराष्ट्र, झारखंड, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश इत्यादि मे अधिक मुल्य पर सब्जी भेजा जा रहा है। इसके अतिरिक्त, मध्य पुर्व के देशों में भी उपरोक्त समुह के सब्जियों की माँग के आधार पर आपुर्ति की जा रही है। इसी प्रकार कृषि विज्ञान केन्द्र, हरनौत (नालंदा) के द्वारा जुनैदी, प्रेमनबिगहा, रामडीहा, सोहसराय, सरदारबिगहा, द्वारिकाबिगहा, जोरारपुर, कल्याणबिगहा, नेहुसा, छतियाना, मुढ़ारी, नगरनौसा, मीराचक, इत्यादि गाँवो मे भी कृषकों के समुह को जैविक खेती के विभिन्न पहलुओ पर प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण इत्यादि एवं जैविक खेती हेतु सरकारी योजनाओ का लाभ लेने के कारण आज नालन्दा जिले मे जैविक खेती की क्षेत्रफल 4000 हे0 (चार हजार हेक्टेयर) मे पहुँच गई है, जबकि 2010–11 में मात्र 14 हे0 भुमि पर ही जैविक खेती होती थी। इस प्रकार कृषि विज्ञान केंद्र, हरनौत (नालन्दा) अपने जिले के किसानों के उत्थान हेतु सतत् प्रयत्नशील हैं।

मौनालय प्रबंधन द्वारा किसानों की समृधि

मनोज कुमार

कृषि विज्ञान केंद्र, पूर्णिया, बिहार

परिचय

मधुमक्खियाँ मानव की सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं | मधुमक्खियों की सेवाएँ अद्वितीय और अनुपम है| मधुमक्खियाँ परागन के द्वारा फसलों की पैदावार बढाती हैं | मधुमक्खियों से मिलने वाला मधु अनगिनत बीमारियों से निजात दिलाता है | मधुमक्खी का डंक गठिये की बीमारी तथा दूसरी कई बिमारियों में लाभ पहुंचाता है | मदुमाक्खियों से मिलने वाला मोम बहुत से औद्योगिक कारखानों में इस्तेमाल होता है | मधुमक्खियाँ मानव के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है -

मधु:- मधु पृथ्वी पर मिलने वाली सब वस्तुओं में अति श्रेष्ठ और अमश्त माना गया है | मधु एक पौष्टिक और लाभदायक भोजन है | हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है जिसमें हमारे देश में मधुमक्खियों के काम आने वाले फूलवाले पौधों आदि की कमी नहीं है | अगर सही ढंग से इस धंधे का विकास किया जाय तो अपने देश में करोड़ो रुपये की वार्षिक वृद्धि की जा सकती है | मधु उत्पादन द्वारा राष्ट्रीय संपदा में वृद्धि तो होती हीं है साथ ही साथ देशवासियों को स्वास्थ्यप्रद भोजन भी मिलता है |

मोम:- मधुमक्खियों से मिलने वाला दूसरा अत्यंत आवश्यक व मूल्यवान पदार्थ मोम है | कई उधोगों में इसका प्रयोग किया जाता है परन्तु इसका उत्पादन व्यापक पैमाने पर भी किया जा सकता है |

राज अवलेह:- यह बहुत हीं उपयोगी पदार्थ है जिसे छः दिन से 12 दिन उम्र की मधुमक्खियाँ अपने सर की ग्रंथियों से पैदा करती हैं और रानी बनने वाले शिशुओं का वजन दुसरे शिशुओं से कई गुना बढ़ जाता है | मानव शरीर में भी इसका उपयोग पाया गया है | विदेशों में यह मनुष्य के आम आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है |

पराग:- यह मधुमक्खियों का प्रधान भोजन है | इससे उनकी प्रोटीन की आवश्यकता पूरी होती है | यह नवजात शिशुओं से लेकर बड़ी मधुमक्खियाँ बनने तक सम्पूर्ण भोजन का काम करती है | यह मानव जाति के लिए भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है | वैज्ञानिकों ने खोज की है कि पराग व शहद का मिश्रण या अकेले पराग का इस्तेमाल करने से लम्बी आयु होती है और जल्दी बुढ़ापा नहीं आता है | मानव जीवन में कुछ खनिज, कुछ किण्वक और कुछ अम्ल तत्व की जरुरत होती है और पराग का इस्तेमाल करने से इन सब तत्वों की पूर्ति हो जाती है |

मधुमक्खियों का डंक:- मधुमक्खियों के पास डंक होता है जो उसकी विष ग्रंथि के साथ जुड़ा रहता है | जब मधुमक्खी डंक मारती है तो यह विष ग्रंथि से उत्पन्न होने वाला विष शरीर में प्रविष्ट होता है | जिससे मानव को कष्ट होता है | लेकिन यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता | इस डंक के विष से गठिये व अन्य कई बीमारियों का उपचार होता है | विदेशों में इस विष को जमा करके इसके इंजेक्शन बनने लगे है जो बाजार में उपलब्ध है |

कृषि उत्पादन में वृद्धि:- कृषि उत्पादन में मधुमक्खियों का बहुत ज्यादा सहयोग होता है | परागन करके मधुमक्खियाँ फसलों की उपज बढाती है | अच्छी किस्म के फल और बीज पैदा होतें है | अनुमान लगया गया है कि अगर शहद और मोम की प्राप्ति से एक रुपया मिलता है तो परागन से 20 से अधिक रुपयों का लाभ होता है | इतना हीं नहीं परागन से मधुमक्खियाँ कई जंगली

पौधों की जातियों को भी अपना परिवार चलाने में मदद लेती है | इससे वातावरण को शुद्ध बनाये रखने में मदद मिलती है|

आदर्श मौनालय की स्थापना

मधु की अच्छी पैदावार के लिए मौनालय का चुनाव तथा उपयुक्त मौनचरो की जानकारी मौनपालको के लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं | सफल मौनपालन हेतु मौनगृहो को जिस स्थान पर रखा जाता है उसे मौनालय कहते हैं | मौनालय का चुनाव करते समय मौनपालको को निम्नलिखित बिन्दुओ पर ध्यान देना चाहिए |

1. मौनालय के एक से तीन कि.मी. की त्रिज्या में चारो ओर पराग एवं पुष्परस प्रदान करने वाले मौनचर उपलब्ध हो |
2. यह स्थान पश्चिमी हवा एवं आंधी से सुरक्षित हो अर्थात उसके पश्चिम दिशा में वायु रोध हो |
3. मौनालय हवादार हो जहाँ ताजी वायु का आवागमन हो सके |
4. मौनालय आंशिक रूप से छायादार हो |
5. इस स्थान में जल जमाव की समस्या न हो |
6. मौनालय में या उस के आस-पास साफ एवं ताजा पानी का स्त्रोत हो |
7. मौनालय मुख्य सड़क से सटा ना हो किन्तु वहां तक पहुँचने के लिए मार्ग अवश्य हो |
8. उस स्थान पर बाढ़ का प्रकोप न होता हो |
9. सार्वजनिक स्थान जहाँ सभा, बैठकें आदि होती हो अथवा स्कुल हो ऐसे स्थान का मौनालय के लिए चुनाव नहीं करना चाहिए |
10. वह स्थान जानवरों एवं आम लोगो के आनेजाने के रास्ते एवं खेल-कूद के मैदान से हटकर हो |
11. वह स्थान चीटी एवं दीमक के अन्डो से सुरक्षित हो |
12. उस स्थान के पास बहुत पुराने पेड़ न हो एवं टेलीफोंन या बिजली के तार ऊपर से न गुजरते हो|
13. एक आदर्श मौनालय में 50 से 100 मौनगृह रखे जा सकते है बशर्ते जगह उपलब्ध हो |

यदि जगह कम हो तो कम मौनगृह भी रखे जा सकते हैं | मौन पेटिकाए एक-दुसरे से 6 से 10 फीट की दूरी पर रखी जा सकती है | ऐसा करने से मधुमक्खिया अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकती है | मौन पेटिकाओ को चतुर्भुज अथवा त्रिभुज के आकर में रखा जा सकता है किन्तु इन्हें त्रिभुज के आकर में रखना अधिक उपयुक्त माना गया है | मधुस्त्राव अवधि में मौन पेटिकाओ को नजदीक तथा भोजनाभाव अवधि में दूर रखना चाहिए |

मौनालय के चुनाव के बाद मौन पेटिकाओ को समतल एवं ऊँची जमीन पर या एक से दो फीट लकड़ी या लोहे के बने स्टैंड पर रखना चाहिए | मौन पेटिकाओ का प्रवेश द्वार सदैव पूरब की ओर रहना चाहिए | यदि पूरब की ओर रखना संभव न हो तो उन्हें दक्षिण की ओर रखना चाहिए | एसा करने से मौनें अपना कार्य सुबह जल्दी शुरू करती है तथा शाम में देर से बंद करती हैं | मौन पेटिकाओ का पिछला भाग थोड़ा उठा हुआ एवं अगला भाग थोड़ा झुका हुआ होना चाहिए |

मौन पालन कब और कैसे शुरू करें

साधारणतया मधुमक्खी पालन कभी भी शुरू किया जा सकता है लेकिन अक्टूबर - नंवम्बर या फ़रवरी-मार्च में शुरू करने पर अधिक सफलता मिलती है | इस अवधि में मौसम अनुकूल होने से मधुमक्खियों को भोजन इक्कठा करने में आसानी होती है, तथा भोजन (पुष्परस एवं पराग) भी अधिक उपलब्ध होते हैं | अधिक भोजन उपलब्ध होने पर मधुमक्खियों की संख्या तेजी

से बढ़ने लगाती है | शत्रु तथा रोग का आक्रमण भी इस समय कम होता है | आने वाले समय में यदि भोजन की कमी होती है तो इस अवधि का एकत्र किया हुआ भोजन काम में आता है और मौनों की संख्या में कमी नहीं हो पाती तथा विषम परिस्थिति को बर्दाश्त करने की क्षमता रहती है |

मधुमक्खी पालन की शुरुआत हमेशा 3-5 परिवार से हीं करना चाहिए ताकि मधुमक्खी पालक को धीरे-धीरे इनके स्वभाव, आवश्यकता एवं प्रबंधन की व्यवहारिक जानकारी हो सके | नये मौन समुदाय को स्थापित करते समय प्रत्येक मौन पेटिका में 5 फ्रेम मौन खरीदना चाहिए क्योंकि इनकी बिक्री फ्रेम पर ही होती है | चूँकि रानी मधुमक्खी लगभग दो हजार अंडा प्रति दिन देती है अतः मौनो की संख्या तेजी से बढ़ जाती है | 21 दिनों के बाद प्रति दिन लगभग दो हजार मधुमक्खी की संख्या बढ़ने लगती है | मौन परिवार खरीदते समय रानी पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए | रानी नयी गर्भित होना चाहिए | जिसमे अंडा देने की क्षमता अधिक रहे | नयी एवं गर्भित रानी का उदर भाग चमकता हुआ होना चाहिए | बिना गर्भित रानी का उदर भाग भूरा एवं चमकहीन होता है | ख़रीदे हुए फ्रेम के छते में अंडे, ब्रूड, पराग तथा मधुकोष्ठ पूरी तरह होने चाहिए | प्रौढ़ों की संख्या में नसे यानि कम आयु की मदुमक्खी भी होनी चाहिए | परिवार में अधिक संख्या में ड्रोन कोष्ठ नहीं होना चाहिए क्योंकि ड्रोन, श्रमिक मौनों से 7-8 गुना अधिक मधु खाते है तथा परिवार में रानी के साथ मैथुन के सिवा कुछ नहीं करते हैं |

विभिन्न मौसमों में मधुमक्खियों का प्रबंधन

ग्रीष्म ऋतु:- मधुमक्खी पेटिका को आंशिक छाया, बगीचा में रखें या क्रत्रिम ढंग से छाया प्रदान करें | बसंत ऋतु में अंतिम मधु स्राव के समय वंश में आवश्यकतानुसार (इटालियन मधुमक्खी के लिए लगभग 7 किग्रा) मधु भंडार छोड़ देना चाहिए क्योंकि आने वाले समय में मधुमक्खियों को भोजन के स्रोत के अभाव का सामना करना पड़ सकता है | इस अवधि में कृत्रिम भोजन (चीनी की चासनी एवं पराग परिपूर्ण भोजन) भी देना चाहिए | साफ पानी की व्यवस्था भी रहनी चाहिए क्योंकि मधुमक्खियाँ इसे पीने के में लाती हैं तथा पेटिका में छिड़क कर पंख से पेटिका को वातानुकूलित बनाती है |शिशुओं के लिए भोजन को पतला करने में भी पानी मिलाती है | वायुमंडल का तापमान 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर पानी से भींगा हुआ बोरी मधु पेटिका के ऊपर रखना चाहिए | इस अवधि में निरिक्षण 15 दिनों के अन्तराल पर सुबह या शाम को करना चाहिए | जल्दी-जल्दी मधु पेटिका को खोलकर मधुमक्खी को छेड़-छाड़ नहीं करना चाहिए | इस अवधि में मदुमाक्खियों की संख्या घटती है अतः अतिरिक्त छत्तों को निकालकर वैगानिक ढंग से भंडारित करना चाहिए अन्यथा मोम पतिंगों का आक्रमण हो सकता है एवं वे छत्तों को खा जायेंगें | इसके आक्रमण से घर घूट होने का डर होता है | चींटी की रोकथाम के लिए स्टैंड के निचे पानी से भरी हुयी प्याली देना चाहिए | उस पानी को मधुमक्खियाँ पीने के काम में भी लाती है | अत: इसे प्रतिदिन बदलते रहना चाहिए |

वर्षा ऋतु:- इस ऋतु में शत्रुओं एवं बीमारी का आक्रमण मौनों में अधिक होता है | इस अवधि में फार्मलीन 150 मिली प्रति घन सेमी. क्षेत्र में किसी जगह उपकरणों के साथ बंद कर घूमन करना चाहिए | फार्मलीन के वाष्प से कीटाणु नष्ट हो जाते हैं | मौनवंश में 0.25 -0.40 ग्राम टेरमाईसिन 5 लीटर चीनी घोल में वंश को दो बार खिलाने से फॉल ब्रूड बीमारी से छुटकारा हो जाता है | मौनालय में साफ पानी के व्यवस्था से नोशिमा बीमारी के फैलने का डर नहीं रहता है | एकेरिन रोग की रोकथाम के लिए गंधक का धूमन करना चाहिए | शत्रुओं से बचाव के लिए मौनवंश को हमेशा शक्तिशाली रखें तथा भोजनभाव काल में पर्याप्त भोजन की आपूर्ति करते रहें | मौनगृह के छेदों एवं दरारों को बंद कर दें | मौनगृह के अन्दर ऐसे छत्ते कदापि न छोड़ें जिनको मौन ढँक कर नहीं रखती | मौनगृह के तलपट को धूप में रखकर अथवा उबलते हुए पानी में रखकर कीट रहित करते रहें |मोमी पतिंगो से प्रभावित छत्तों को निकालकर मोम निकालने के काम में लायें या नष्ट कर दें | विढना की रोकथाम के लिए प्रवेश - द्वार को वन बी-स्पेस के बराबर बंद कर दें |

शीतकालीन प्रबंधन:- इस समय सरसों जाति में मौनचर उपलब्ध होने से मौनवंशों में शिशुपालन का कार्य जारी रहता है | अगर कमजोर परिवार हैं तो डम्मी बोर्ड लगा देना चाहिए | बक्से को धूप में रखना चाहिए | रिमझिम वर्षा या कुहासा होने पर कृत्रिम भोजन देना चाहिए | पूरानी रानी के बदलने का उचित समय है | जब बक्से में 9-10 फ्रेम हो जाये तो विभाजन कर देना चाहिए | ठण्ड से बचाने के लिए गूर की बोरी या पूआल की चटाई से बक्से को ढँक दें | वंश का निरिक्षण दोपहर दिन में करें |

बसंत ऋतु:- बसंत ऋतु सुहावना होता है तथा चारों ओर पुष्प मिलने लगते हैं | इन दोनों हीं दशाओं में अच्छा मौन प्रजनन आरम्भ होता है | धीरे-धीरे मधुस्राव बढ़ता है | इस प्रकार बसंत ऋतु के मौसम में अनुकूलता और दशाओं के अनुसार मौन वंश को उतेजित करने / बक्छुट नियंत्रण एवं संग्रह क्षमता को बढ़ाये रखने की आवश्यकता है |

मधुमक्खियो के रोग एवं प्रबंधन

शिशुकी बीमारियाँ

जीवाणुजनित रोग

मधुमक्खियो में मुख्यतः दो तरह के जीवाणुजनित रोग लगते हैं | अमेरिकन फाउल ब्रुड और यूरोपियन फाउल ब्रुड |

अमेरिकन फाउल ब्रुड:- यह बीमारी बैसिलस लार्वी नामक जीवाणु से होती है एवं इसका प्रसार एक मौनवंश से दुसरे व एक मौनालय से दुसरे तक लूटपाट, बहक, भागौड़पन, घरछुट तथा स्थानांतरण से होता है |

लक्षण:- ग्रसित सूंडी शुरू में सफ़ेद या धुंधला रंग जो बाद में भूरे रंग या पूर्णतया काली हो जाती है | मृत सुंडी नरम, चिपचिपा या लस्सेदार एवं धागेनुमा लच्छेदार दिखते है जिनसे भद्दी बदबू आती है | ग्रसित सूंडी कोष्ट के निचले भाग में चिपके हुए होते हैं | मृत शिशुओ को तिनके से उठाने पर धागानुमा दिखाई देते हैं जिनका सिर चिपटा, शरीर अंकड़ा हुआ एवं रंग काला होता है |

प्रबंधन:- अधिक ग्रसित कालोनियों को नष्ट कर देना चाहिए एवं स्वस्थ मौनवंशो को अलग कर दें| फार्मलीन की 2 मि.ली.मात्रा प्रति ली.पानी के साथ मिलाकर मधुमधुमक्खीपालन में आने वाले यंत्रो को जीवाणुरहित बनाना चाहिए | 250-400 मि.ग्रा.टेरामाईसिन 5 ली. चीनी के चासनी के साथ 15 दिनों के अन्तराल पर खिलाने से इस रोग के आक्रमण से बचाया जा सकता है | सोडियम सल्फर थायाजोल की 100 मि.ग्रा. या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन की 50-150 मि.ग्रा.मात्रा प्रति लीटर चीनी घोल के साथ खिलाना चाहिए |

यूरोपियन फाउल ब्रुड:- यह बीमारी मेलिसोकोकस प्लूटोन नामक जीवाणु से होती है एवं इसका प्रसार अमेरिकन फाउल ब्रूड की तरह होता है |

लक्षण:- ग्रसित सूंडी छत्ते में 4-5 दिन की आयु में मर जाते हैं जिनसे खट्टी दुर्गन्ध आती है एवं इनका रंग सफ़ेद से बदल कर पीला हो जाता है | मृत शिशुओ के शरीर में जल जैसा दानेदार तरल एकत्र हो जाता है एवं तिनके से छूने से धागे नहीं बनते और यह चिपकने वाला नहीं होता है शिशु का शरीर मुड़ी हुई अवस्था में कोष्ठ में पड़ा रहता है |

प्रबंधन:- इस रोग का प्रबंधन अमेरिकन फाउल ब्रूड की तरह करना चाहिए |

विषाणुजनित रोग

जीवाणुजनित रोगों की तरह मधुमक्खी के शिशु में विभिन्न प्रकार के विषाणुजनित रोग भी लगते है जैसे थाई सैक ब्रूड वायरस, सैक ब्रूड वायरस एवं कश्मीर ब्रूड वायरस इत्यादि | इनमे से सैक ब्रूड वायरस एपिस मेलीफेरा में लगता है एवं सेरेना को कोई क्षति नहीं पहुंचाता | इसी तरह

थाई सैक ब्रूड वायरस जो एपिस सेरेना में लगता है मेलीफेरा में नहीं पाया गया है |

थाई सैक ब्रूड वायरस-यह बीमारी थाईसैक ब्रूड नामक विषाणु से होती है |

लक्षण:- ग्रसित सुंडियो का रंग शुरू में हल्का पीला फिर भूरा और बाद में चाकलेटी या काला सा हो जाता है | सिर वाला हिस्सा काले रंग में बदलकर कोषो की दीवारों से अलग हो जाता है | शिशुओ की त्वचा शख्त होकर पानी से भर जाना एवं ग्रसित सुंडी का थैली जैसा बन जाना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं | इस बीमारी से ग्रसित मौनवंशो में घरछुट भी होने लगता है |

प्रबंधन:- विषाणुजनित रोग का प्रबंध करना बहुत कठिन है लेकिन रानी मक्खी को कुछ समय के लिए बक्से से बाहर व ग्रसित शिशुओ को छत्तों से बाहर निकलने से कम किया जा सकता है | ग्रसित मौनवंश को या तो नष्ट कर देना चाहिए या मौनालय से कुछ दूरी पर अलग कर देना चाहिए|

सैक ब्रूड वायरस:- यह बीमारी सैक ब्रूड नामक विषाणु से होती है |

लक्षण:- इस रोग से ग्रसित सुंडियो का रंग सफ़ेद से धूल जैसा और बाद में सिर की ओर से काला होकर सारा शरीर काला पड़ जाता है | मृत शिशु पानी भरे थैले की तरह दिखाई देते हैं और बंद कोष्टो में मिलते हैं | ऐसे कोष्ठों के टोपीदार ढक्कन नीचे धंसे हुए और छोटे-छोटे छिद्रों वाले जैसे दिखते हैं | सैक ब्रूड का प्रभाव इटालियन मधुमक्खी (एपिस मेलीफेरा) पर अधिक पाया गया है |

प्रबंधन:- इस बीमारी का प्रबंधन थाई सैक ब्रूड की तरह करना चाहिए |

फफुंदजनित रोग

मधुमक्खी के शिशुओ में कई तरह के फफुंदजनित रोग लगते हैं जैसे खड़िया शिशु रोग एवं पत्थर शिशु रोग |

खड़िया शिशु रोग:- यह बीमारी एस्कोस्फेरा एपिस नामक फफुंद से होती है |

लक्षण:- यह बीमारी आमतौर पर 3-4 दिन पुराने सुंडियो में पाया जाता है | शुरू में मृत सुंडी फूला हुआ दिखता है एवं शरीर का रंग सफ़ेद उसके बाद घूसर और अंत में काले रंग का हो जाता है | बाद में मृत सुंडी ममिकृत, सख्त, सिकुड़ा हुआ और चाक की तरह हो जाता है |

प्रबंधन:- मौनगृह में अधिक नमी न होने दें | थाईमोल 6 ग्राम प्रतिवंश चीनी के चासनी के साथ मिलाकर दें या इथिलीन आक्साइड या फार्मिक अम्ल का भाप दें |

पत्थर शिशु रोग:- यह बीमारी एस्परजिलस फ्लेव्स नामक फफुंद व कभी-कभी एस्परजिलस फ्युमीगेट्स व इसके दुसरे वर्ग द्वारा होती है |

लक्षण:- ग्रसित सुंडियो पहले फुल जाती है और बाद में पीले भूरे और अंत में हरे-पीले रंग में बदलकर कठोर हो जाती है |

प्रबंधन:- इस रोग का प्रबंधन खड़िया शिशु रोग की तरह करना चाहिए |

प्रौढ़ मधुमक्खी की बीमारियाँ

नोसेमा रोग:- यह अत्यंत खतरनाक बीमारी है जो सभी प्रजातियो की प्रौढ़ मधुमक्खियो में लगती है इससे ग्रसित मौनवंश कभी-कभी तेजी से कमजोर हो जाते हैं जिससे उनकी उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है | यह बीमारी नोसेमा एपिस जेन्डर नामक प्रोटोजोआ से होती है जो जाड़े तथा वसंत ऋतू में तीव्र गति से फैलती हैं | इनका प्रवेश स्वस्थ मधुमक्खियो के शरीर के अन्दर गंदे पानी या भोजन के द्वारा होता है जो उनकी पाचन क्रिया को प्रभावित करता है |

लक्षण:- ग्रसित मधुमक्खियो का ठीक तरह से न उड़ पाना, पेचिश की शिकायत और पीले या

मटमैले पदार्थ का शरीर से बाहर निकलना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण है | कभी-कभी बक्से के सामने मधुमक्खियाँ अधमरी या मारी हुई नजर आती है ऐसे में ग्रसित श्रमिक मधुमक्खियो के द्वारा ठीक तरह से भोजन की उपलब्धता न करा पाने के कारण रानी मक्खी अंडे देना कम कर देती है और परिवार कमजोर हो जाता है |

प्रबंधन:- मौनालय में ताजा व स्वच्छ पानी का प्रबंध करना चाहिए एवं मौनवंशो को खुले धुप वाले स्थान पर रखना चाहिए | डिपेंडाल एम.50 मि.ग्रा./ली.या टिनीडाजोल 250 मि.ग्रा./ली. चीनी के घोल में देना लाभदायक है | एन्टाकाम एम. का 1 टेबलेट / ली.चीनी घोल के साथ व्यवहार करें |

लकवा या अंगमारी रोग:-

यह बीमारी मानव में पाए जाने वाले लकवे की तरह ही होती है हमारे देश में इस बीमारी का प्रकोप मौनवंशो में कम पाया जाता है |

लक्षण:- इस रोग से ग्रसित मधुमक्खियाँ उड़ नहीं पाती बल्कि घिसट का चलती हैं | ग्रसित मधुमक्खियो के शरीर का रंग चमकीला होना, शरीर से बाल गिरना, पेट फूल जाना, शरीर कांपना एवं बीमार मधुमक्खियो को स्वस्थ मधुमक्खियो द्वारा छत्ते से बाहर निकाल कर फेंक देना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण हैं |

प्रबंधन:- ग्रसित कालोनियों को धूप में रखने से इस रोग से बचाव किया जा सकता है क्योंकि छाया या नमीयुक्त स्थान पर रखने से यह रोग अधिक बढ़ता है | पुरानी रानी को निकालकर नई एवं स्वस्थ रानी की व्यवस्था करनी चाहिए | गंधक का चूर्ण शिशु रहित चौखटों (फ्रेमो) पर छिड़कने से निदान किया जा सकता है |

दस्त या पेचिश रोग:-

यह बीमारी प्रोटोजोआ द्वारा होती है जो ख़राब भोजन करने से व अधिक ठण्ड में रहने से होती है | मौसम के बदलने पर ठण्ड कम होते ही अच्छी धुप निकलती है तब यह बीमारी धीरे-धीरे अपने आप कम हो जाती है |

लक्षण:- ग्रसित मधुमक्खियां घर के भीतर व बाहर पीला व मटमैला पदार्थ छोड़ने लगती है |

प्रबंधन:- ग्रसित परिवार को धुप में रखने से इसका बचाव किया जा सकता है | दस्त से बचाव के लिए मेटरीनीडेजोल नामक दवा प्रति टेबलेट प्रति ली.चीनी के घोल में मिलाकर देने से प्रकोप कम हो जाता है |

एकेरीन या अष्टपदीरोग:-

यह छुत की बीमारी है | यह बीमारी विनाशकारी होती है | जो अष्टपदी मकड़ी अथवा एकारपिस वुडी के नाम से जानी जाती है | जब बीमारी का प्रकोप अधिक बढ़ जाता है तो रेंगती हुई मक्खियाँ छत्ते के इर्द-गिर्द पाई जाती है | अगले और पिछले पंख अंगरेजी शब्द k का रूप धारण कर लेते हैं | रेंगती हुई मक्खियाँ छत्तों से दूर चली जाती हैं और वापस लौट नहीं सकती है | पाचन की खराबी की वजह से जगह-जगह पीले मटमैले पदार्थ बूंदों के रूप में छत्ते के ऊपर या इधर-उधर नजर आयेंगे | पेट बड़ा और चमकदार हो जाता है | इस बीमारी के कीटाणुओ की सही पहचान खुर्दबीन से ही लगाईं जा सकती है |

इस रोग के उपचार के लिए गंधक का धुमन काफी गुणकारी माना जाता है | मोटे कागज को 30 प्रतिशत पोटेशियम नाइट्रेट के घोल में डुबोकर उस पर सल्फर की लेई चढाकर और सुखाकर इस कागज के टुकड़ो को धुआंकर में डालकर इसके धुए को मौनो पर छोड़ने से माईट मर जातें हैं | इसका धुमन जाड़े के आरम्भ या अंत में करना लाभकारी है | इसी प्रकार क्लोरो बेन्जीलेट की बनी धुमन पट्टियों को जलाकर मौनगृह में दरारों को बंद कर धुमन करने से इस माईट का नियंत्रण किया जा सकता है | इस कागज की पट्टी पर 500 मि.ग्रा.क्लोरोबेन्जीलेट होना चाहिए

| प्रतिवंश एक पट्टी की प्रति सप्ताह 5-6 बार धुमन करना पर्याप्त होता है |

फार्मिक अम्ल के वाष्प भी इस रोग के उपचार के लिए अच्छे माने जाते हैं | 5 मि.ली. फार्मिक अम्ल को एक छोटी शीशी में डालकर उस पर रुई का ढक्कन लगाने के बाद आधार पटल पर रख दिया जाता है तथा रात में प्रवेश द्वार बंद कर दिया जाता है हर दुसरे दिन शीशी के रसायन को बदल दिया जाता है | इस प्रकार 15-20 दिनों के लगातार धुमन से माईट समाप्त हो जाते हैं |

मिथाइल सैलीसिलेट का धुमन भी इस रोग के उपचार के लिए उपयोग में लाया जा सकता है परन्तु यह कम लाभकारी है |

स्वास्थ्य और समृधि के लिए जैविक खेती में कुशल फसल प्रबंधन

डॉ. अभिषेक प्रताप सिंह

कृषि विज्ञान केंद्र जलालगढ़, पूर्णिया, बिहार

देश में हरितक्रांति के परिणामस्वरूप खाद्यान फसलों के साथ ही सब्जियों की फसलों में भी उन्नत एवं अधिक उपज क्षमता वाली प्रजातियों का विकास हुआ है | इन प्रजातियों की समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए पारंपरिक प्रजातियों कि अपेक्षा अधिक मात्रा में पोषक तत्व यानी नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की आवश्यकता होती है और इन तत्वों को वाह्य स्रोतों जैसे खाद एवं रासायनिक उर्वरकों से पूर्ति की जाती है | संकर प्रजातियों से अधिक उत्पादन प्राप्त करनें के लिए उन्नत प्रजातियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में खाद एवं उर्वरकों कि आवश्यकता होती है जिसके परिणामस्वरूप रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग निरंतर बढ़ता गया, इनके अधिक मात्रा में प्रयोग करनें से मृदा कि भौतिक एवं रासायनिक संरचना पर विपरीत प्रभाव पड़ा है | राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर उर्वरकों की मांग एवं बढ़ती कीमत तथा पूर्ति के बीच बढ़ते अंतर को ध्यान में रखते हुए मानव/पशु/मृदा स्वास्थ्य और समृधि के लिए जैविक कृषि तकनीक भूमि की उर्वरता एवं फसलों की उत्पादकता को अधिक समय तक स्थिर बनाए रखनें के साथ-साथ मृदा में दितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमीं भी नहीं होनें देते है|

1. **जैविक खाद:-** जैविक खाद मृदा कि भौतिक एवं रासायनिक संरचना तथा जैविक गुणों पर लाभदायक प्रभाव डालते है, अतः मृदा में जैविक पदार्थों की पर्याप्त उपलब्धता के लिए जैविक खादों का प्रयोग अनिवार्य है | जैविक खादों तथा विभिन्न फसलों के खलियों में पाई जाने वाली पोषक तत्वों की मात्रा है -

क्र.	जैविक खाद	नाइट्रोजन (%)	फास्फोरस (%)	पोटाश (%)
1.	गोबर की खाद	0.5 - 1.5	0.3 - 0.9	0.3 - 1.5
2.	ग्रामीण कम्पोष्ट	0.5 - 1.0	0.4 - 0.8	0.8 - 1.2
3.	शहरी कम्पोष्ट	0.7 - 2.0	0.9 - 3.0	1.0 - 2.0
4.	करंज खली	3.8 - 4.0	0.8 - 0.9	1.0 - 1.2
5.	नीम खली	4.9 - 5.1	1.0 - 1.2	1.3 - 1.5
6.	अरंडी खली	4.1 - 4.3	1.6 - 1.8	1.1 - 1.3
7.	मूंगफली खली	7.1 - 7.3	1.3 - 1.9	1.1 - 1.3
8.	नारियल खली	2.8 - 3.0	1.7 - 1.9	1.7 - 1.9
9.	सरगुजा खली	4.6 - 4.8	1.6 - 1.8	1.31 - 1.4
10.	तिल कि खली	6.0 - 6.2	1.8 - 2.0	1.0 - 1.2

2. **दलहनी फसल:-** मुख्यत: दलहनी फसलों को सब्जी एवं मसालों के साथ अंत:फसल के रूप में उगानें पर पौधों कि वृधि काफी उत्साहजनक एवं उपज अधिक एवं गुणवत्तायुक्त होती

है, क्योंकि दलहनी फसलें खेत में उगानें से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है जिसका लाभ पौधों को प्राप्त होता है दलहनी फसलों द्वारा नाइट्रोजन का योगिकीकरण नीचे दर्शाया गया है |

क्र.	फसल का नाम	नाइट्रोजन (कि.ग्रा.)
1.	लोबिया	85 - 90
2.	सोयाबीन	55 - 60
3.	मटर	70 - 75
4.	मूंगफली	40 - 45
5.	बीन (राजमा)	35 - 40

दलहनी फसल का सब्जी फसल के साथ सफल प्रायोगिक प्रयोग:- कृषि विज्ञान केंद्र, पूर्णियां द्वारा केंद्र के अधिदेश के तहत वर्ष 2013 - 14, 2014 - 15, एवं 2015 - 16 में अंतरवर्ती फसल के रूप में भिन्डी के साथ लोबिया का प्रक्षेत्र परीक्षण किया गया, जिसमें भिन्डी तथा लोबिया क्रमश: 2:1 के अनुपात में लगाया गया था , जिसका औसत पैदावार क्रमश: 63.86 क्विं./हेक्टे (भिन्डी)तथा 27.30 क्विं./हेक्टे.(लोबिया) तथा लाभ लागत अनुपात 3.70 पाया गया साथ - ही साथ मिट्टी में ओसतन 40 - 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का यौगिकीकरण भी हुआ|

3. **हरी खाद:-** हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जैविक पदार्थ के अतिरिक्त नाइट्रोजन कि मात्रा बढ़ जाती है इसके अतिरिक्त जीवो द्वारा रासायनिक प्रक्रिया में तीब्रता भी आती है तथा पोषक तत्वों का संरक्षण भी बढ़ जाती है प्रमुख रूप से उगाई जाने वाली हरी खाद में पायी जाने वाली औसत पोषक तत्वों कि मात्रा निम्न है -

क्र.	स्थानीय नाम	वैज्ञानिक नाम	नाइट्रोजन (%)
1.	ढैंचा	सेस्बानिया एक्युलियाटा	0.41 - 0.43
2.	सनई	क्रोटोलेरिया जन्सिया	0.40 - 0.42
3.	सैंजी	मेलिलोअस आल्वा	0.55 - 0.57
4.	बरसीम	ट्राईफोलियम अलेक्सनड्रिनम	0.44 - 0.46

इसके अतिरिक्त गिरिपुष्प (गिलरिसीडीया) एवं सुबबूल (ल्युकायना) लगाकर उसके पतों का हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है गिलरिसीडीया की एक टन हरी पत्ती में 30 - 40 कि.ग्रा.नाइट्रोजन, 3.0 - 3.2 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 15 - 25 कि.ग्रा. पोटास मिलता है |

4. **फसल अवशेष:-** मृदा में फसलों के अवशेषों के प्रयोग से जैविक कार्बन में वृधि के साथ - साथ कई पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी वृधि होती है तथा मृदा की भौतिक संरचना में भी सुधार होती है | विभिन्न प्रकार के फसल अवशेषों में पाई जाने वाली औसत पोषक तत्वों कि मात्रा निम्न है-

क्र.	फसल अवशेष	नाइट्रोजन (%)	फास्फोरस (%)	पोटास (%)
1.	धान का भूसा	0.30 - 0.50	0.20 - 0.50	0.30 - 0.50
2.	मूंगफली का भूसा	1.60 - 1.81	0.30 - 0.51	1.10 - 1.70
3.	ज्वार का तना	0.60 - 0.65	0.70 - 0.75	2.30 - 2.50
4.	रागी का तना	0.40 - 0.41	0.21 - 0.23	2.15 - 2.17

5. **केंचुआ खाद:-** यह उच्च कोटि का संतुलित जैविक खाद है जो केंचुओ द्वारा तैयार किया जाता है, इसमें नाइट्रोजन 1.0 - 2.0 प्रतिशत, फास्फोरस 1.0 - 1.5 प्रतिशत तथा पोटाश 1.5 - 2.0 प्रतिशत के अलावा अन्य सभी सूक्ष्म पोषक तत्व एवं विभिन्न प्रकार के एन्जाइम उपलब्ध होते है जो पौधों के लिए आवश्यक होते है | यह मृदा कि उर्वरता तथा जलधारण क्षमता को बढाती है | केंचुआ खाद का प्रयोग फसल बुवाई से पहले 4.0 - 5.0 क्विं./हेक्टेयर की दर से मृदा में मिलाकर किया जाता है | इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए मृदा में मिलाने के उपरांत इसे पुवाल, सूखी पत्तियां या कूड़ा - कर्कट से मृदा के उपरी सतह को ढक दिया जाता है|

6. **जैव उर्वरक**

"जैव उर्वरक प्राथमिक रूप से सक्रिय सूक्ष्म जीव होते हैं जो कि पौधों की वृद्धि में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को तात्विक नाइट्रोजन में परिवर्तित, मृदा फास्फोरस को घुलनशील बनाकर हारमोन्स विटामिन इत्यादि पदार्थों को संतुलित मात्रा में बढ़ाते है।"

जैव उर्वरकों का वर्गीकरण एवं उनकी क्षमता:

जैव उर्वरकों को उनके महत्वपूर्ण कार्यो के आधार पर निम्नांकित वर्गो में बांटा गया है:

नाइट्रोजन प्रदान करने वाले जैव उर्वरक:

एक हेक्टेयर मृदा के ऊपर उपस्थित वायुमण्डलीय स्तम्भ में 80000 टन नाइट्रोजन होती **है जो कुल वायुमंडल का लगभग 79 प्रतिशत हैं** परन्तु प्रत्यक्ष रूप से पौधे इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं। इस वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को तात्विक नाइट्रोजन में बदल कर पौधों को उपलब्ध करा पाना कुछ जीवाणुओं द्वारा ही सम्भव है। इन जीवाणुओं को निम्नांकित वर्गो में बाटा गया है।

(क) सहजीवी:

इस वर्ग के जीवाणु दलहनी फसलों की जडों में गाठें बनाकर अपना जीवन यापन करते है। राइजोबियम एवं ब्रेडिराइजोबियम जीवाणु इसके अर्न्तगत आते हैं।

(ख) असहजीवी:

इस वर्ग के जीवाणु अपना जीवन यापन स्वतन्त्र रूप से करते हैं इसमें सब्जी की फसलों के लिए एजोटोवैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम महत्वपूर्ण जीवाणु हैं जो कि 25–30 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन की पूर्ति कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ये जीवाणु हारमोन्स एवं विटामिन्स का भी उत्पादन करते हैं।

फास्फोरस को घुलनशील बनाने वाले जैव उर्वरक:

भारतीय मृदाओं में फास्फोरस का स्तर मध्यम से निम्न है। कुल मृदा फास्फोरस का 1 – 5 प्रतिशत भाग ही पौधे ग्रहण कर पाते हैं। शेष भाग अघुलनशील अवस्था में होता है। फसलों में उपयोग किये जाने वाले कुल उर्वरक का 30 प्रतिशत भाग फसल को प्राप्त होता है। शेष भाग रासायनिक क्रियाओं के द्वारा अघुलनशील हो जाता है। कुछ जीवाणु जैसे कि वैसीलस तथा स्थूडोमानाज, कवक जैसे कि पेनिसीलियम एवं एस्परजिस्लस मृदा फास्फोरस को घोलने के साथ–साथ फसल में दिये गये उर्वरक की उपयोग क्षमता को भी बढ़ाते हैं। इन जैव उर्वरकों के प्रयोग 15 -25 प्रतिशत फास्फोरस उर्वरकों के प्रयोग में बचत होती है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग की विधियां:

1. मृदा उपचार:

2-3 किग्रा0 जैव उर्वरक को 40 – 50 किग्रा0 मृदा या कम्पोस्ट में मिलाकर एक एकड़ भूमि में विखेर देते हैं। जैव उर्वरक को कल्टीवेटर से मृदा में अच्छी तरह से मिला देते हैं।

2. बीज उपचार:

इस विधि में 10 -15 किग्रा0 बीज के लिए 200 ग्राम जैव उर्वरक की आवश्यकता होती है। जैव उर्वरक को 400 मिली0 पानी में घोलकर बीजों के ऊपर डाल देते हैं। घोल को हाथों से बीजों में अच्छी तरह मिला देते है। बीजों को छाया में सुखाकर तुरन्त बुआई कर देना चाहिए।

3. पौध उपचार:

सर्वप्रथम एक किग्रा0 जैव उर्वरक को 10 -15 लीटर पानी में घोल देते हैं। एक एकड़ **क्षेत्रफल** के लिए पर्याप्त पौधों के छोटे–छोटे बन्डल बनाकर उनकी जडों को 15 –20 मिनट तक के लिए घोल में डुबो देते हैं। इसके बाद पौधों को तुरन्त रोपाई कर देते हैं। इस विधि से प्याज, गोभी, टमाटर आदि फसलों का उपचार करते हैं।

4. कन्द उपचार:

कन्दीय फसलें जैसे कि आलू, जिमीकन्द, बन्डा आदि का उपचार इस विधि से करते हैं। इस विधि में एक किग्रा0 जैव उर्वरक को 50 –60 लीटर पानी में घोल देते हैं। कटे हुए टुकडों या सम्पूर्ण कन्दों

को 10 –15 मिनट तक घोल में डुबो देते हैं। इसके बाद कन्दों को घोल से निकालकर छाया में सुखा देते हैं। कन्दों की तुरन्त रोपाई कर देते हैं। उपरोक्त जैव उर्वरक की मात्रा एक एकड़ **क्षेत्रफल** के लिए पर्याप्त कन्दों के लिए संस्तुति है।

5. स्लरी उपचार:

आधा किग्रा0 जैव उर्वरक को 40 लीटर पानी में घोल लेते हैं। 2 किग्रा0 गुड़ को एक लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह उबाल लेते हैं। ठन्डा होने पर इसको जैव उर्वरक के घोल में मिला देते हैं। 80 किग्रा0 कन्दों को इस घोल में आधा घन्टे के लिए डुबो देते हैं। इसके बाद कन्दों को छाया में सुखाकर बुआई कर देते हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग से सब्जियों की उपज में वृद्धि

उपचार	फसल	उपज (कु0/हे0)		वृद्धि (प्रतिशत)
		बिना उपचारित	उपचारित	
एजोटोवैक्टर	भिन्डी	24.80	26 -0^0	8 -3^0
एजोटोवैक्टर	चौलाई	188.70	299 -0^0	9 -09
फास्फोरस घोलक सूक्ष्म जीव	बैगन	125-00	137 -50	9 0-0^0
एजोटोवैक्टर	मेथी	142-30	178 -30	2 0-19
एजोटोवैक्टर + राइजोवियम	मेथी	142-30	185 -50	23 -29
एजोटोवैक्टर	बैगन	180-00	220 -00	15 -8^0
एजोटोवैक्टर	मिर्च	14 -50	16 -00	10 -0^0
फास्फोरस घोलक सूक्ष्म जीव	फूलगोभी	34-00	36 -50	7 -35
एजोटोवैक्टर	भिन्डी	23-40	25 -5 0	8 -97
एजोटोवैक्टर	फूलगोभी	32-50	34 -5	6 -2^0
एजोटोवैक्टर + फास्फोरस वैक्टिीरिया	आलू	253-00	271 -0	6 -64
एजोटोवैक्टर + एजोटोपाइरिलम	शकरकंद	29-51	38 -19	22 -73

जैव उर्वरकों से लाभ:

1. जैव उर्वरक प्राकृतिक उत्पाद है तथा वायुमन्डल एवं मृदा में हानिकारक प्रभाव नहीं छोड़ते हैं।
2. जैव उर्वरकों की रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षा कम मात्रा में आवश्यकता होती है।
3. जैव उर्वरक नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के अतिरिक्त हारमोनों एवं विटामिनों का भी उत्पादन करते है।
4. जैव उर्वरक सस्ते एवं हल्के होते है जिससे उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने मे आसानी होती है।

5. जैव उर्वरक पौधों की रोगों एवं कीटो से भी रक्षा करती है ।
6. जैव उर्वरक आगामी फसल पर अवशिष्ट प्रभाव छोडते है।
7. जैव उर्वरकों के प्रयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां

जैव उर्वरकों का प्रयोग करते समय निम्नलिखित विन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

1. जैव उर्वरकों को छायादार एवं ठन्डे स्थानों पर रखना चहिए।
2. जैव उर्वरकों के पैकेट को प्रयोग करने के तुरन्त पहले खोलना चहिए।
3. जैव उर्वरक को इसके प्रयोग की अन्तिम तारीख से पहले प्रयोग करना चाहिए।
4. यदि बीजों को जैव उर्वरक के अतिरिक्त किसी कीटनाशी या कवकनाशी से उपचारित करना हो जब इस स्थिति में सबसे पहले कवकनाशी से इसके बाद कीटनाशी से सबसे अन्त में जैव उर्वरक से करना चाहिए।
5. यदि बीजों को पारायुक्त रसायन से उपचारित कर रहें हो, तब जैव उर्वरक की दुगुनी मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

7. कीट एवं बिमारियों का जैविक नियंत्रण

फसलों में कीट एवं बिमारियों का नियन्त्रण रासायनिक दवाओं द्वारा करना एक सरल एवं प्रभावी तरीका है परन्तु इसके अत्यधिक प्रयोग से कृषि व्यवस्था में कई समस्याएँ उत्पन्न होती है जो निम्न है-

- कीट में कीटनाशक के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा होना |
- वातावरण एवं भूमिगत जल का प्रदूषित होना |
- मानव एवं पशु स्वास्थ्य में हानिकारक प्रभाव |
- फसलों के लाभदायक कीट का ह्रास होना |
- रासायनिक दवाओ एवं श्रमिक में अधिक खर्च होना |
- रासायनिक दवाओ द्वारा उत्पादित फसलों के भण्डारन क्षमता में कमी |

उपरोक्त समस्याओ को देखते हुए कीट एवं बिमारियों के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित जैविक प्रबंध किये जा सकते है -

1. प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग |
2. अगेती रोपाई करना |
3. गर्मी के मौसम में खेत कि गहरी जुताई करना |
4. पलवार (मल्चिंग) द्वारा खरपतवार को नष्ट करना तथा खेत में नमी बनाये रखना |
5. उचित समय पर सिचाई करना तथा अत्यधिक पानी होने पर उचित जल निकास का प्रबंध

करना |

6. जैविक पोषक तत्वों का समुचित मात्रा में प्रयोग करना |
7. खेत में करंज एवं नीम की खली का प्रयोग करना |
8. गंधपान (फेरोमेन ट्रेप) द्वारा कीड़ों एवं बिमारियों के कारकों कि रोकथाम |
9. प्राकृतिक शत्रुओं के द्वारा कीड़ों एवं बिमारियों के कारकों की रोकथाम |
10. वानस्पतिक पदार्थों यथा नीम, तुलसी, लेंटाना, करंज इत्यादि कि पत्तियों के घोल के प्रयोग से फसलों में कीड़ों एवं बिमारियों कि समस्या को कम करना |

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित उपायों द्वारा भी फसल की सुरक्षा कम खर्च में किया जा सकता है

i. **बेसिलस थुरिनजेंसिस:-** इसको संक्षेप में बी.टी. के नाम से भी जाना जाता है, जो फूलगोभी एवं पातगोभी पर हीर पीठ (डायमंड बैक माथ) का नियन्त्रण करता है | इसका प्रयोग 500-1000 ग्रा.कल्चर प्रति हेक्टेयर 650 लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतराल पर छिडकाव किया जाता है |

ii. **ट्राईकोडरमा:-** यह एक जैविक फफूंदनाशक है जो मुख्यत: ट्राईकोडरमा विरिडी पर नामक फफूंद है | यह आलु, हल्दी, अदरक, प्याज, लहसुन आदि फसलों के जड़ सडन, तना गलन, झुलसा आदि रोग जो फफूंद से पनपते है के प्रबंधन में काफी प्रभावकारी होता है | साथ ही टमाटर एवं बैगन के जीवाणु मुरझा रोग की रोकथाम के लिए भी उपुक्त पाया गया है | इसका प्रयोग फसल बोनें के समय 2 - 4 ग्राम/किग्रा बीज उपचार हेतु पौधशाला में करना चाहिए या 1.5- 2.० किग्रा प्रति एकर खेत में अंतिम जुताई के समय 10-15 किग्रा सड़े गोबर कि खाद में मिलाकर बिखेर देना चाहिए |

iii. **ट्राईकोग्रामा:-** यह छोटी ततैया पर आधारित है जो पतंगो के अण्डों के परजीवी होते हैं | इसे 8 - 10 कार्ड प्रति हेक्टेयर की दर से 10 - 15 दिनों के अंतराल पर 3 - 4 बार फसल में शाम के समय लगा दिया जाता है | फूलगोभी एवं पत्तागोभी में ट्राईकोग्रामा बेक्ट्री तथा अन्य सब्जियों में ट्राईकोग्रामा किलोनिस का प्रयोग किया जाता है |

iv. **नीम आधरित कीटनाशक:-** इसका उपयोग सफ़ेद मक्खियों, भृग, फुदका (जेसिड्स) कटुवा कीट, टहनी तथा फल छेदक सुंडी पर किया जाता है यह कीड़ों के जीवन चक्र को कमजोर बनाता है | इसका प्रयोग सब्जी फसल पर लगभग 700 लीटर नीम घोल की आवश्यकता एक हेक्टेयर के लिए होती है | नीम बीज का घोल बनाने के लिए 34 किग्रा. नीम के बीज को पीस कर 100 लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार करते है तथा 12 घंटे बाद इसे कपड़े में छानकर फसलों में छिडकाव करते है |

याद रखिये सबसे बड़ा अपराध अन्याय सहना और गलत के साथ समझौता करना है।

– सुभाष चन्द्र बोस

परिशिष्ट

D.O. No...1776.......AM

राधा मोहन सिंह
RADHA MOHAN SINGH

सत्यमेव जयते

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF AGRICULTURE
& FARMERS WELFARE
GOVERNMENT OF INDIA

29 AUG 2017

संदेश-2017

संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था क्योंकि यह देश के अधिकांश वर्ग द्वारा बोली व समझी जाती है। इसके साथ भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परम्पराएं जुड़ी हुई हैं। यह ऐतिहासिक निर्णय 14 सितम्बर, 1949 को लिया गया था। इसलिए प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को हम हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं। किसी भी देश की संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अत्यंत आवश्यक है। महात्मा गांधी ने भारत के लिए राष्ट्रभाषा के लक्षण गिनाए थे। उन्होंने स्वतंत्रता के महासमर में भारत की संपर्क भाषा के लिए जो आह्वान किया था उसके अनुसार वह ऐसी भाषा हो जो धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक बोलचाल को सहज सरल बनाए रख सके और ऐसी तो वो हो ही जिसे ज्यादातर लोग बोलते हों। गांधी जी ने यह अनुभव किया था कि अंग्रेजी के कारण ही भारत के शासक आम लोगों से दूर नजर आते हैं। हिन्दी एक अत्यंत सरल, समृद्ध एवं सशक्त भाषा है और भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है। उसके मूल में विश्व की प्राचीनतम समृद्ध भाषा संस्कृत है और साथ में तमाम भारतीय भाषाएं उसकी ताकत हैं। हिन्दी और सभी भारतीय भाषाएं कभी भी अंग्रेजी की अनुचरी नहीं हो सकती। उन्हें तो आपस में ही संवाद करना होगा। यह भरोसा किया गया कि हिन्दी के राजभाषा होने का मतलव यही है कि राज्य के तंत्र में हिन्दी के साथ सभी भाषाएं एक गहन भारतीय संवाद का माध्यम बन सके।

देश में आम बोल चाल की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग काफी बढ़ा है। सरकारी कार्यालयों में सरकारी काम-काज में भी हिन्दी का प्रयोग किया जा रहा है। पहले की अपेक्षा सरकारी कार्यों में हिन्दी का प्रयोग काफी हो रहा है। इसे और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। यह जरूरी है कि विभागों में सरकारी कार्य मूल रूप से हिन्दी में हो। इसके लिए शुरूआत हमें, स्वयं से करनी होगी। यदि हम हिन्दी का सही मायने में सम्मान करें तो नई पीढ़ी को भी अपनी भाषा के सम्मान का संस्कार दे पाएंगे।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद देश का शीर्षस्थ कृषि अनुसंधान संगठन है। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में इसके 250 से अधिक शोध संस्थान/केन्द्र देश भर में कृषि की अलग-अलग विधाओं में कार्य कर रहे हैं। इन शोध उपलब्धियों तथा अनेक पहलों जैसे फार्मर्स फस्ट, स्टूडेंट रेडी, आर्या, आदि की लोकप्रियता संबंधित हितधारकों के बीच तभी बढ़ेगी जब इनका प्रचार-प्रसार हिन्दी तथा स्थानीय भाषाओं में किया जायेगा।

Office : Room No. 120, Krishi Bhawan, New Delhi-110 001 Tel.: 23383370, 23782691 Fax : 23384129

मैं मानता हूं कि प्रशासनिक स्तर पर हिन्दी में कार्य करने का वातावरण परिषद व इसके संस्थानों में बन चुका है। वैज्ञानिक संगोष्ठियों/सम्मेलनों में भी हिन्दी का प्रयोग पहले की अपेक्षा काफी बढ़ा है। परन्तु जिस स्तर पर हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए अभी वह वातावरण नहीं बन पाया है। हम पत्र-व्यवहार में हिन्दी का प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। अपने ही उच्च अधिकारियों को टिप्पणियां लिखने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। आज भी इस अपार क्षमता वाली भाषा हिन्दी को कविता, कहानी चुटकुले और पहेलियों की भाषा ही समझते हैं। अपनी भाषा का प्रयोग करते समय हम दूसरों की ओर देखते हैं या अनुवाद का सहारा लेते हैं। स्वयं हिन्दी का प्रयोग करने से बचते हैं। किसी भी अभिव्यक्ति को मूल रूप से स्वयं व्यक्त किया जाए तो उसका सम्प्रेषण कुछ और होता है जबकि अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद की गई भाषा का मूल भाव या अभिव्यक्ति कुछ और होती है।

इसके लिए मैं आप सबका आह्वान करता हूं कि आइए हम सब हिन्दी को उस स्थान पर पहुंचाने का संकल्प लें जिसकी वह हकदार है जिससे यह संपूर्ण देश की पहचान बन सके। इसके लिए हम सभी को एक साथ यह संकल्प लेना होगा कि हम अनुवाद की वैसाखी का सहारा लिए बिना ही अपना समस्त कार्य बिना किसी संकोच के अधिक से अधिक हिन्दी में ही करें।

प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी परिषद व इसके संस्थानों में हिन्दी सप्ताह/पखवाड़ा/हिन्दी चेतना मास मनाया जा रहा है। मैं इस अवसर पर समस्त कर्मचारियों/अधिकारियों का आह्वाहन करता हूं कि इस शुभ अवसर पर अपना समस्त कार्य हिन्दी में करें और यह सुनिश्चित करें कि हिन्दी के सतत विकास हेतु उनके पूर्ण योगदान से राजभाषा को विश्व फलक पर सर्वोच्च स्थान व सम्मान मिल सके।

हिन्दी दिवस पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(राधा मोहन सिंह)

त्रिलोचन महापात्र, पीएच.डी.
एफ एन ए, एफ एन ए एस सी, एफ एन ए ए एस
सचिव एवं महानिदेशक
TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
FNA, FNASc, FNAAS
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001
GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel.: 23382629; 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

अपील

हिन्दी दिवस की सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ और व्यापक बनाने में भाषा सदैव से एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी रही है। भाषा केवल बोलचाल और काम-काज का ही माध्यम नहीं है, बल्कि भाषा भाषियों के सभी तरह के सांस्कृतिक क्रियाकलाप का माध्यम भी है। भाषा ही समाज को बिखरने से बचाती है, उसे एक सूत्र में बांधती है।

भारत में हिन्दी भाषा और साहित्य की एक समृद्ध व गौरवशाली परम्परा रही है । हिन्दी भाषा का इतिहास बहुत ही पुराना है। देश में आम-बोल चाल की भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग काफी बढ़ा है। देश के किसी भी क्षेत्र में जाएं तो हम पाते हैं कि हिन्दी समझने वाले प्रत्येक स्थान पर मौजूद हैं। सरकारी काम-काज में हिन्दी का प्रयोग किया जा रहा है लेकिन इस पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए यह जरूरी है कि विभागों में सरकारी कार्य मूल रूप से हिन्दी में हो।

हमें अपनी भाषा में कार्य करने पर संतोष होना चाहिए। विज्ञान जैसे जटिल विषय को हम सरल भाषा में लिखने का प्रयास करें तो आम जनता तक अपनी बात पहुंचा सकते हैं। राजभाषा हिन्दी का प्रयोग लोक हित में है, संवैधानिक आवश्यकता है, प्रत्येक कार्मिक का समान दायित्व है। हमें अपने दैनिक सरकारी कार्यों में हिन्दी का प्रयोग स्वेच्छा एवं स्वाभाविक रूप से करना चाहिए और रोजमर्रा के कार्यों जैसे हस्ताक्षर, ई-मेल, एसएमएस, बधाई संदेश, छोटे-छोटे पत्रों आदि को लिखने के लिए स्वप्रेरणा से हिन्दी का ही प्रयोग करना चाहिए। उच्च अधिकारी हिन्दी में स्वयं लिखे कर्मचारियों की नियुक्ति के समय उनके हिन्दी ज्ञान पर भी ध्यान देना चाहिए और नए कर्मचारियों को शुरू से ही हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

मैं परिषद व इसके प्रत्येक संस्थान/केन्द्र के विभागाध्यक्षों से यह अपील करता हूं कि वे अपने-अपने विभाग के सामान्य कामकाज मूल रूप से हिन्दी में ही करें। कार्यालयों में आयोजित होने वाली कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, सम्मेलनों तथा समारोहों का माध्यम हिन्दी हो। इसमें पूरे कार्यालय को भागीदार बनाया जाए। आज तकनीक का युग है। उसी के अनुरूप कम्प्यूटर पर हिन्दी में काम करने के लिए आज सभी प्रकार के साफ्टवेयर उपलब्ध हैं जिनकी सहायता से अपना पूरा काम बहुत ही आसानी से हिन्दी में किया जा सकता है। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूं कि हिन्दी में वह क्षमता है कि वह विश्व पटल पर विराजमान हो। हिन्दी को विश्व पटल पर स्थापित करने के लिए हमें और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके लिए बिना अनुवाद का सहारा लिए हम अपना दिन-प्रतिदिन का सरकारी कामकाज हिन्दी में करें, ताकि वैज्ञानिक उपलब्धियों को जन-जन तक पहुंचाने में सफल हो सकें।

आइए, इस अवसर पर हम सब मिलकर यह संकल्प लें कि आज से ही हम अपना सभी कार्य हिन्दी में ही करेंगे।

मैं, परिषद व इसके संस्थानों में हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित किए जाने वाले समारोहों की सफलता की कामना करता हूं।

दि. 5-9-2017

त्रि. महापात्र
(त्रिलोचन महापात्र)

किसी भी धर्म का ग्रन्थ पढने से जातिभ्रष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता| मैंने तो कई बार बाइबिल और कुराने शरीफ को पढ़ा है | मै न तो ईसाई बना और न ही मुसलमान बना | बहुत से यूरोपियन गीता और रामायण पढ़ते हैं, वे तो हिंदू नहीं हुए|

– राजा राममोहन राय

टिप्पणी